ओ३म्

यज्ञानुराग

प्रार्थना, स्वस्तिवाचन,
शान्तिपाठ, यज्ञ एवं बृहद् हवन

के

उत्कृष्ट वेदमन्त्र

विधुशेखर त्रिवेदी *I. A. S.*
(अ. प्रा.)

मूल्य ८०.००

पं० उमादत्त त्रिवेदी स्मृति वेद मन्दिर
ई/१४ इन्डस्ट्रियल, एस्टेट, तालकटोरा रोड
लखनऊ

यज्ञानुराग

वैदिक ज्ञान एवं यज्ञ के प्रचार प्रसार

हेतु

श्रीमती चम्पा देवी वैदिक संस्थान

के

तत्वावधान में

मेसर्स उमा प्रकाशन लिमिटेड

ई/१४ इन्डस्ट्रियल एस्टेट, ताल कटोरा रोड, लखनऊ

द्वारा

मुद्रित एवं प्रकाशित

श्री विधुशेखर त्रिवेदी I. A. S.

(अ. प्रा.)

प्रथम संस्करण—२,०००

श्रावण कृष्ण त्रयोदशी, सम्वत् २०५४

शुक्रवार, दिनाङ्क १ अगस्त, १९९७

सर्वाधिकार सुरक्षित

ओ३म्

पूज्य पिता

स्व० पं० उमादत्त जी त्रिवेदी

एवं

स्नेहमयी पूज्या माँ

स्व० श्रीमती चम्पा देवी त्रिवेदी

की

पावन स्मृति

में

सादर सर्मापित

प्रकाशकीय

स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना के श्रेष्ठतम मन्त्रों की पुस्तक 'वेद सुरभिः' के पश्चात् यज्ञ, होम अथवा हवन के विषय में इस श्रेष्ठ पुस्तक को प्रकाशित करते हुये हमें अत्यधिक हर्ष है। बृहद् हवन के मन्त्रों की कोई अच्छी पुस्तक अब तक उपलब्ध न होने के कारण यज्ञ प्रेमियों को होम करने में अत्यन्त कठिनायी हो रही थी। इस कमी को दूर करने के लिये इस पुस्तक में लगभग १४० ऐसे श्रेष्ठ मन्त्रों का अर्थ सहित संकलन किया गया है, जिनका वेद एवं ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार यज्ञ में विनियोग है। साथ ही प्रार्थना, स्वस्ति वाचन एवं शान्ति पाठ के उत्कृष्ट ८२ मन्त्रों का भी अर्थ सहित पाठ दिया गया है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि दर्श पौर्णमास यज्ञ से प्रारम्भ होने वाले श्रौत यज्ञों की वास्तविक शास्त्रीय पद्धति कठिन एवं जटिल है तथा विद्वान् ऋत्विजों के बिना इन यज्ञों को सम्पन्न करना असम्भव है। अतः समाज की वर्तमान परिस्थितियों तथा साधनों एवं समय के अभाव को दृष्टि में रखते हुये यही उचित प्रतीत होता है कि परिवार के प्रत्येक मांगलिक अवसर तथा प्रत्येक पूर्णिमा अमावास्या एवं महत्त्वपूर्ण पर्वों पर सभी प्रबुद्ध सज्जनों द्वारा बृहद् हवन का आयोजन करके पुण्य के साथ साथ शान्ति, नीरोगिता सुख एवं समृद्धि अर्जित की जाय। हमें विश्वास है कि इस पुनीत कार्य में यह पुस्तक अत्यन्त लाभदायक सिद्ध होगी।

प्रेमा त्रिवेदी

(श्रीमती प्रेमा त्रिवेदी)
महा सचिव, श्रीमती चम्पा देवी वैदिक संस्थान
एवं प्रबन्ध निदेशक, उमा प्रकाशन लिमिटेड

भूमिका

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।।

।। ऋग्. १० । ९० । १६, यजु. ३१ । १६, अथर्व. ७ । ५ । १ ।।
ऋग्. १ । १६४ । ५०

(देवाः यज्ञेन यज्ञं अयजन्त) देवों ने, विद्वानों ने (यज्ञेन) यज्ञ के द्वारा उस (यज्ञम्) पूजनीय परमात्मा का (अयजन्त) पूजन किया (तानि) विविध प्रकार के वे यज्ञ (प्रथमानि धर्माणि आसन्) प्रथम अथवा सर्वश्रेष्ठ धर्म अर्थात् प्रमुख धार्मिक कार्य थे । (ह ते महिमानः नाकं सचन्त) निश्चय ही यज्ञ करने वाले वे विद्वान् महिमा से युक्त होकर, महिमामण्डित होकर स्वर्ग अथवा आनन्द के उस परमधाम को प्राप्त होते हैं (यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति) जहाँ यज्ञ के द्वारा साधना करने वाले, विविध प्रकार के यज्ञों को सम्पन्न करने वाले पूर्वकालीन विद्वान् निवास करते हैं ।

आध्यात्मिक अर्थ—(यज्ञेन यज्ञं अयजन्त देवाः) देवों ने, विद्वानों ने ज्ञान यज्ञ से यज्ञ अर्थात् पूजनीय परमात्मा का पूजन किया, ध्यान किया (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्) ज्ञान से ईश्वरोपासना रूपी वह कर्म सर्वोत्कृष्ट है, (ते ह नाकं महिमानः सचन्त) इस प्रकार ध्यान योग से परमात्मा का दर्शन करने वाले वे ज्ञानी पुरुष महिमा मण्डित होकर स्वर्ग अर्थात् दुःख रहित तथा नित्य सुख से युक्त उस स्थान को प्राप्त होते हैं (यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति) जहाँ पूर्व के योगसाधन करने वाले प्रकाशमान विद्वान् निवास करते हैं, अर्थात् भगवान के परमधाम, को प्राप्त करते हैं, मोक्ष प्राप्त करते हैं ।

सदाचारी विद्वान् देव कहे जाते हैं।
'विद्वांसो हि देवाः' विद्वान् देव हैं।
'विबुधा देवाः' विशेष ज्ञानी देव हैं।

यज्ञ का महत्त्व—यज्ञ से न केवल यज्ञ करने वाले पुरुष को बल्कि सम्पूर्ण समाज को सुख एवं समृद्धि प्राप्त होती है। शतपथ ब्राह्मण १।७।१।८ एवं तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।२।१।४ में कहा है **"यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म"** यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है।

इसी प्रकार गोपथ ब्राह्मण में कहा गया है **'यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म तस्माद् मनुष्येभ्यो यज्ञ प्राहुः'**। निश्चय ही यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म है अतएव मनुष्यों के लिये इसका विधान किया गया है।

यज्ञ के महत्त्व को दृष्टि में रखते हुये तैत्तिरीय ब्राह्मण ३।९।५।५ में कहा है **यज्ञो वै भुवनस्य नाभिः**। स्वयं वेद में ही कहा गया है अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः—ऋग् १।१६४।३५, यजु. २३।६२ यह यज्ञ समस्त संसार की नाभि है, केन्द्र बिन्दु है। दैवी शक्तियों द्वारा निःस्वार्थ भाव से तथा संसार के कल्याण के लिये निरन्तर किये जा रहे आधिदैविक यज्ञ के कारण ही यह संसार चक्र चल रहा है तथा समस्त प्राणी जीवित हैं।

सर्वेषां वा एष भूतानां सर्वेषां वा देवानामात्मा यद्यज्ञः।
यह यज्ञ समस्त प्राणियों एवं देवों का आत्मा है। श. १४।३।२।१
प्रजापतिः वै यज्ञः तस्मिन् सर्वे कामाः सर्वाः इष्टीः सर्वम् अमृतत्वम्।
गोपथ उत्त. २।१८

यज्ञ ही प्रजापति है, उसमें समस्त मनोरथ, समस्त इष्टियाँ तथा सम्पूर्ण अमृत है। यज्ञः प्रजापतिः इति। बृहदा. ३।९।६ "यज्ञो वै विष्णुः स देवेभ्य इमां विक्रान्ति विचक्रमे"—शतपथ. १।१।२।१३

यज्ञ विष्णु है, उसी ने देवों को पराक्रम से युक्त किया है। इसमें सन्देह नहीं कि यज्ञ अर्थात् परमात्मा को समर्पित श्रेष्ठतम त्यागमय कर्मों से ही पुरुष ऐसा पराक्रम प्राप्त कर सकता है जिससे उसे अभ्युदय तथा निःश्रेयस की प्राप्ति हो।

यज्ञ के महत्त्व का उल्लेख करते हुये भगवान् कृष्ण ने कहा है—

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः ।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर ।।

।। गीता. । ३ । ९ ।।

यज्ञ अर्थात् देव पूजन, दान, त्याग, परोपकार एवं श्रेष्ठ जनों की संगति से भिन्न उद्देश्यों के लिये किये गये अन्य कर्म बन्धनकारी होते हैं। अतः हे कौन्तेय ! (मुक्तसङ्गः) आसक्ति रहित होकर (तदर्थं कर्म समाचर) यज्ञ के निमित्त श्रेष्ठ कर्मों को भली प्रकार करो। स्वामी शङ्कराचार्य जी ने यज्ञो यज्ञ का अर्थ ईश्वर किया है। उन्होंने लिखा है—"यज्ञो वै विष्णुः (तै. सं. १ । ७ । ४) इति श्रुतेर्यज्ञ ईश्वरः तदर्थं यत् क्रियते तद् यज्ञार्थं कर्मः"। "यज्ञ ही विष्णु है" इस श्रुति प्रमाण से यज्ञ ईश्वर है; उसके लिये जो कर्म किया जाय वह 'यज्ञार्थ कर्म' है।

सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।।

।। गीता. ३ । १० ।।

(प्रजापतिः) प्राणि मात्र को उत्पन्न करने वाले परमात्मा ने (पुरा) सृष्टि के आदि काल में (सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा) प्रजा को यज्ञ के साथ ही उत्पन्न करके (उवाच) कहा, निर्देश दिया कि (अनेन प्रसविष्यध्वम्) तुम लोग इस यज्ञ से उत्तरोत्तर वृद्धि तथा उन्नति प्राप्त करो। (एषः वः इष्ट कामधुक् अस्तु) यह यज्ञ तुम लोगों की अभीष्ट कामनाओं को पूर्ति करने वाला हो।

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ।।

।। गीता. ३ । ११ ।।

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः ।।
भुञ्जते ते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात् ।।

गीता. ३ । १३ ।।

(यज्ञ शिष्टाशिनः) यज्ञ तथा दान से शेष बचे हुये अन्न का भोजन करने वाले (सन्तः सर्वकिल्बिषैः मुच्यन्ते) श्रेष्ठ पुरुष समस्त पापों से मुक्त हो जाते है किन्तु जो (आत्मकारणात् पचन्ति) केवल अपने लिये ही भोजन पकाते है (ते पापाः तु अघं भुञ्जते) वे पापी तो वास्तव में पाप ही खाते हैं ।

यहाँ यह कहना आवश्यक है कि दान, यज्ञ का प्रमुख अङ्ग है । अतः इस श्लोक का यह स्पष्ट अर्थ है कि जो भूखे व्यक्ति को अन्न दिये बिना स्वयं खाता है, वह पापी है और उसका भोजन साक्षात् पाप ही है ।

वेद में भगवान् ने यह स्पष्ट रूप से कहा है कि जो दूसरे को अन्न दिये बिना ही खाता है उसे मैं खा जाता हूं ।

यो मा ददाति स इदेवमावदहमन्नमन्नमदन्तमद्मि ।

।। तैत्तरीय अरण्यक ६ । १० ।। साम. ६ । १ । ६ । क्रम सं. ५६४

(यो मा ददाति) जो अन्न स्वरूप मुझको, भूखे लोगों को देता है (स इत् एवं आवत्) वही इस प्रकार मेरी रक्षा करता; (क्योंकि जिस भूखे व्यक्ति की अन्न से रक्षा होती है वह भी तो (भगवान्) का ही रूप है) । (अन्नं अदन्तं अहम् अन्नं अद्मि) अन्न का दान न करते हुये, जो स्वयं अकेले ही अन्न को खाता है उसे अन्न स्वरूप मैं स्वयं खा लेता हूं ।

इस प्रकार भगवान् स्वयं अन्न भी है और उसके खाने वाले भी ।

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥
गीता० । ३ । १४ ॥

समस्त प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, अन्न वर्षा से उत्पन्न होते हैं, वर्षा यज्ञ से होती है तथा (यज्ञः कर्मसमुद्भवः) यज्ञ कर्म से उत्पन्न होने वाला है।

वास्तव में यज्ञ तथा तप दोनो ही कर्म से उत्पन्न होते हैं। यही कर्म की महत्ता है। वेद में कहा गया है।

तपश्चैवास्तां कर्म चान्तर्महत्यर्णवे ।

तपो ह जज्ञे कर्मणस्तत् ते ज्येष्ठमुपासत ॥

अथर्व. ११ । ८ । ६

(महति अर्णवे अन्तः) महान संसार सागर में (तपः च कर्म च एव आस्ताम्) तप और कर्म ही विद्यमान थे। (ह तपः कर्मणः जज्ञे) निश्चय ही तप कर्म से उत्पन्न हुआ है, (ते तत् ज्येष्ठं उपासत) वे कर्म और तप ज्येष्ठ ब्रह्म की उपासना करने के लिये थे।

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षरसमुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ॥
गीता० ३ । १५ ॥

(कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि) कर्म को वेद से उत्पन्न हुआ जान। वेद अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुये हैं। अतएव सर्वव्यापी ब्रह्म सदा यज्ञ में प्रतिष्ठित है।

एवं प्रवर्त्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह यः ।
अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति ।।

गीता. ३ । १६

हे पार्थ ! इस प्रकार चलाये हुये सृष्टि चक्र का जो अनुसरण नहीं करता, उसके अनुसार कार्य नहीं करता वह (इन्द्रियारामः) केवल इन्द्रियों के सुखों को भोगने वाला (अघायुः) पापात्मा अथवा पाप से पूर्ण आयु वाला स्वार्थी व्यक्ति व्यर्थ ही जीवित रहता है ।

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्म चैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ।।

गीता. १७ । २७

यज्ञ, तप तथा दान में जो स्थिति होती है, उसे सत् कहा जाता है तथा उन यज्ञादि के लिये किये जाने वाले कर्म अथवा भगवान के निमित्ति किये जाने वाले कर्म को भी 'सत्' ही कहा जाता है ।

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ।।

गीता. १८ । ५

यज्ञ, दान तथा तप ये तीन प्रकार के कर्म कभी त्यागने योग्य नही हैं, इन्हें तो सदैव करना ही चाहिये । यज्ञ, दान तथा तप मनीषियों अर्थात् अपने मन पर शासन करने वाले अनासक्त ज्ञानी पुरुषों को पवित्र करने वाले होते हैं ।

ईश्वर की सर्वव्यापकता एवं सर्वरूपता को दृष्टि में रखते हुये यज्ञार्थ तथा लोक कल्याण के लिये कर्म करना चाहिये और इन कर्मों को भगवान को ही अर्पण कर देना चाहिए क्योंकि यह समस्त विश्व उसी का रूप है, वह परमपिता इसमें ओतप्रोत है, इसके कण कण में व्याप्त है और इस जगत् में जो कुछ भी है वह (ईशावास्यम्)

ईश्वर से आच्छादित है, उसी का है। इस प्रकार किये गये निःस्वार्थ कर्म यज्ञ रूप होते हैं और उनसे मनुष्य का जीवन यज्ञमय हो जाता है तथा ऐसे श्रेष्ठ पुरुष में कर्म लिप्त नहीं होते।

ब्रह्मण्याधाय कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा करोति यः।

लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा॥

गीता। ५। १०

जो पुरुष आसक्ति से रहित होकर समस्त कर्मों को (ब्रह्मणि आधाय) ब्रह्म में अर्पण करके करता है वह उसी प्रकार पाप से लिप्त नहीं होता जिस प्रकार कमल का पत्ता जल में रहते हुये भी जल से लिप्त नहीं होता।

प्रत्येक मनुष्य अपने कर्मों द्वारा ही भगवान की उपासना करके परम सिद्धि को प्राप्त कर सकता है। वास्तव में भगवान को अर्पण करके कर्तव्य भाव से आसक्ति रहित होकर लोक कल्याण के लिये कर्म करना भी अर्चना एवं उपासना है और यही यज्ञ का सामाजिक रूप है।

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।

कुर्याद्विद्वांस्तथासक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥

गीता. ३। २५

हे भारत! (कर्मणि सक्ताः अविद्वांसः) कर्मों में आसक्त रहने वाले अज्ञानी जन जिस प्रकार अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये निरन्तर परिश्रम पूर्वक कार्य करते हैं, उसी प्रकार (असक्तः विद्वान्) अनासक्त विद्वान् को (चिकीर्षुः लोक संग्रहम्) लोक कल्याण की कामना करते हुये (कुर्यात्) परिश्रम पूर्वक अनवरत पूर्ण लगन, निष्ठा एवं समर्पण की भावना से कार्य करना चाहिये। यही गीता द्वारा प्रतिपादित जीवन का वास्तविक सिद्धान्त है तथा यही यज्ञीय जीवन का, वैदिक जीवन का वास्तविक रूप है।

कैसा दुर्भाग्य है कि आज हम गीता की बात तो करते हैं, उसकी दिखावटी प्रशंसा भी करते हैं किन्तु भगवान् श्री कृष्ण की उक्त शिक्षाओं का अनुसरण नहीं करते जब कि भगवान् ने स्पष्ट रूप से कहा है—

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते ॥
॥ गीता । ३ । २१ ॥

(श्रेष्ठः) श्रेष्ठ पुरुष, (यत् यत् आचरति) जो जो आचरण करता है, (इतरः जनः तत् तत् एव) दूसरे लोग उस उस का ही अनुसरण करते हैं। (सः यत् प्रमाणं कुरुते) वह श्रेष्ठ पुरुष जिस कर्म को प्रमाण के रूप में स्थापित करता है, (लोकः तत् अनुवर्तते) लोग उसी को प्रमाण मानते हुये वैसा ही आचरण करते हैं।

यज्ञों के भिन्न भिन्न रूप—यज्ञों के विभिन्न रूपों का अत्यन्त सरल एवं सुन्दर वर्णन गीता में किया गया है जिसे प्रत्येक विद्वान् को अवश्य पढ़ना चाहिये।

गतसङ्गस्य मुक्तस्य ज्ञानावस्थितचेतसः ।
यज्ञायाचरतः कर्म समग्रं प्रविलीयते ॥
॥ गीता ४ । २३ ॥

ज्ञान में स्थित हुये चित्त वाले तथा यज्ञ के लिये आचरण करते हुये (गतसङ्गस्य मुक्तस्य) आसक्ति से रहित तथा विभिन्न सांसारिक बन्धनों से मुक्त पुरुष के (समग्रं कर्म प्रविलीयते) समग्र कर्म नष्ट हो जाते हैं।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ॥
॥ गीता ४ । २४ ॥

(ब्रह्म अर्पणम्) हवन करने के साधन अर्थात् स्रुवा आदि ब्रह्म हैं (ब्रह्म हविः) हवि भी ब्रह्म है (ब्रह्म अग्नौ ब्रह्मणा हुतम्) तथा अग्नि रूपी ब्रह्म में यज्ञ कर्त्ता रूपी ब्रह्म द्वारा जो हवन किया गया है, वह भी ब्रह्म है। (क्योंकि सर्वं खल्विदं ब्रह्म) यह समस्त संसार ब्रह्म ही है। (ब्रह्म कर्म समाधिना) (ब्रह्म कर्म मे स्थित है चित्त जिसका अर्थात् जिसके लिये समस्त कर्म ब्रह्म ही हैं, (तेन ब्रह्म एव गन्तव्यम्) उस परम ज्ञानी का गन्तव्य भी ब्रह्म ही होता है अर्थात् वह ब्रह्म को ही प्राप्त करता है, उसके समस्त पुण्य कर्मों का फल ब्रह्म प्राप्ति ही होता है।

स्वामी शङ्कराचार्य जी ने ब्रह्म कर्म समाधिना का अर्थ लिखा है—ब्रह्म कर्म समाधिना, ब्रह्म एव कर्म ब्रह्म कर्म तस्मिन् समाधिः यस्य स ब्रह्म कर्म समाधिः। तेन ब्रह्मकर्म समाधिना ब्रह्म एव गन्तव्यम् अर्थात् ब्रह्म रूप कर्म में जिसका चित्त स्थिर हो गया है उस पुरुष द्वारा प्राप्त किये जाने योग्य जो फल है, वह भी ब्रह्म ही है।

यह महत्वपूर्ण श्लोक ब्रह्मज्ञानी पुरुष की उस स्थिति का वर्णन करता है जिसमें उसके लिये समस्त प्राणी तथा समस्त जगत् ब्रह्म ही हो जाता है। **यस्मिन्त्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद् विजानतः** यजु० । ४० । ७ ॥ जिस स्थिति में विशेष ज्ञानी के लिये समस्त भूत अर्थात् समस्त प्राणी एवं पदार्थ आत्मा ही हो गये। इसी अद्वैतावस्था का वर्णन वेद में, 'पुरुष एवेदं सर्वम्' यजु. । ३१ । २ ॥ यह समस्त जगत्, पुरुष ही है, कह कर किया गया है।

इस श्लोक से यह भी इंगित होता है कि परम ज्ञानी को भी अग्निहोत्र आदि श्रेष्ठ कर्म निष्काम भाव से निरन्तर करते रहना चाहिये।

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते ।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति ।।
गीता । ४ । २५ ।।

(अपरे योगिनः दैवं एव यज्ञं पर्युपासते) अन्य अर्थात् कुछ योगी जन देवताओं के पूजन रूप यज्ञ का ही भली प्रकार अनुष्ठान करते हैं तथा (अपरे) कुछ अन्य (यज्ञेन) ज्ञान यज्ञ द्वारा (ब्रह्माग्नौ) ब्रह्म रूपी अग्नि में (यज्ञं एव उप जुह्वति) अपने आत्मा का ही हवन करते हैं।

ज्ञान द्वारा आत्मा का परमात्मा में प्रवेश अथवा ब्रह्म साक्षात्कार ही ज्ञान यज्ञ द्वारा आत्मा की परमात्मा में आहुति देना है ।

वेद में कहा गया है–'आत्मना आत्मानं अभि संविवेश' (यजु. ३२ । ११) ज्ञानी भक्त आत्मा द्वारा परमात्मा में सम्यक् रूप से प्रवेश करता है । यही आत्मयज्ञ अथवा पुरुषमेध यज्ञ है ।

श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यन्ये संयमाग्निषु जुह्वति ।
शब्दादीन्विषयानन्ये इन्द्रियाग्निषु जुह्वति ।।
गीता ४ । २६

(अन्ये श्रोत्रादीनि इन्द्रियाणि संयमाग्निषु जुह्वति) कुछ अन्य योगी जन संयम रूप अग्नियों में श्रोत्रादि इन्द्रियों का हवन करते हैं अर्थात् संयम से इन्द्रियों को अपने वश में करते हैं। (शब्दादीन् विषयान् अन्ये इन्द्रियाग्निषु जुह्वति) तथा कुछ अन्य इन्द्रिय रूपी अग्नियों में शब्दादि विषयों का हवन करते हैं। संयमित इन्द्रियों वाले योगी पुरुष द्वारा केवल कर्तव्य भाव से श्रेष्ठ कर्म करना तथा इन्द्रियों के विषयों से प्रभावित न होना ही इन विषयों का इन्द्रिय रूपी अग्नि में हवन करना है ।

यहाँ इन्द्रियों का अग्नि रूप में वर्णन, संयमित इन्द्रियों की श्रेष्ठता की ओर इंगित करता है । इन्द्रियों को अपने वश में कर लेने वाले मनीषियों की इन्द्रियाँ ऐसी अग्नि स्वरूप हो जाती हैं कि

समस्त विषय उनमें भस्म हो जाते है। भगवान शङ्कर द्वारा अपनै ज्ञान चक्षु (तीसरे नेत्र) से कामदेव को भस्म कर देने की कथा इसी का एक उदाहरण है।

सर्वाणीन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि चापरे ।
आत्मसंयमयोगाग्नौ जुह्वति ज्ञानदीपिते ।

गीता. ४। २७

(अपरे) अन्य योगीजन (सर्वाणि इन्द्रियकर्माणि प्राणकर्माणि च) समस्त इन्द्रियों की चेष्टाओं तथा प्राणों के व्यापारों अर्थात् अपने समस्त कर्मों तथा सम्पूर्ण जीवन को (आत्मसंयम योगाग्नौ ज्ञान-दीपिते) आत्मसंयम से उत्पन्न तथा ज्ञान से प्रकाशित योगरूपी अग्नि में (जुह्वति) हवन करते हैं। गीता ४। १६ में कहा गया है 'ज्ञानाग्नि दग्ध कर्माणि तमाहुः पण्डितं बुधाः' ज्ञान रूपी अग्नि में दग्ध हो गये हैं कर्म जिसके, उसे ही ज्ञानीजन पण्डित कहते हैं।

द्रव्ययज्ञास्तपोयज्ञा योगयज्ञास्तथापरे ।
स्वाध्यायज्ञानयज्ञाश्च यतयः संशितव्रताः ॥

गीता. ४। २८

(द्रव्य यज्ञाः) कुछ लोग परोपकार की दृष्टि से लोक कल्याण के कार्यों में धन लगाकर द्रव्य यज्ञ करने वाले होते हैं। (तपो यज्ञाः) तपस्वी लोग तपरूपी यज्ञ करने वाले होते हैं, (योग यज्ञाः) योग का अनुष्ठान करने वाले योगी, योग रूपी यज्ञ करने वाले होते है (अपरे स्वाध्याय ज्ञान यज्ञाः च यतयः संशितव्रताः) तथा यमनियम आदि व्रतों का सूक्ष्मता एवं शुद्धता से आचरण करने वाले एवं आत्मोन्नति के लिये सतत् प्रयत्नशील रहने वाले अनेक अन्य पुरुष वेदाध्ययन रूपी स्वाध्याय यज्ञ तथा ज्ञानार्जन रूपी ज्ञानयज्ञ करने वाले होते हैं। यम नियम आदि रूपी श्रेष्ठ व्रतों को तीक्ष्ण करने वाले अर्थात् पूर्ण शक्ति एवं मनोयोग से उनका सम्यक् रूप से पालन करने वाले वीर पुरुष 'संशितव्रताः' कहलाते हैं।

अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे ।
प्राणापानगती रुद्ध्वा प्राणायामपरायणाः ॥

गीता. ४ । २९

[अपरे प्राणायम परायणाः] प्राणायाम करने वाले कुछ अन्य लोग [अपाने जुह्वति प्राणं] अपान वायु में प्राण वायु का हवन करते है अर्थात् अपान में प्राण का प्रक्षेप करते है। [श्वास को अन्दर लेकर पूरक प्राणायाम करना ही अपान में प्राण का हवन करना है] [तथा प्राणे अपानं] तथा प्राण में अपान का हवन करते है अर्थात् प्राण वायु को बल पूर्वक बाहर निकालकर रेचक प्राणायाम करते हैं [प्राणापान गती रुद्ध्वा] तथा प्राण और अपान दोनों की गतियां को रोककर कुम्भक प्राणायम करते हैं।

अपरे नियताहाराः प्राणान्प्राणेषु जुह्वति ।
सर्वेऽप्येते यज्ञविदो यज्ञक्षपित कल्मषाः ॥

गीता. ४ । ३०

[अपरे नियत आहाराः] कुछ अन्य नियमित एवं संयमित आहार करने वाले लोग [प्राणान् प्राणेषु जुह्वति] भिन्न भिन्न प्राणों को प्राणों में हवन करते हैं अर्थात् प्राणायाम की भिन्न भिन्न क्रियाओं द्वारा प्राणों को संयमित एवं शक्तिशाली बनाकर आत्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करते हैं और योग से प्राप्त की जाने वाली उच्च अवस्थाओं को प्राप्त करते हैं। यज्ञ द्वारा नाश हो गये हैं पाप जिनके, ऐसे ये समस्त पुरुष यज्ञों को जानने वाले हैं।

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ॥

गीता. ४ । ३१

हे कुरुश्रेष्ठ ! [यज्ञशिष्टामृतभुजः । यज्ञानां शिष्टं यज्ञशिष्टं । यज्ञशिष्टं च तद् अमृतं च यज्ञशिष्टामृतं] यज्ञ से शेष बचे हुये

अमृतरूपी भोजन को ग्रहण करने वाले श्रेष्ठ पुरुष सनातन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं। यज्ञ रहित पुरुष के लिये तो यह लोक भी नहीं है अर्थात् उसके लिये तो यह लोक भी सुखदायक नहीं है, [अन्यः कुतः] फिर परलोक कैसे सुखदायक होगा।

एवं बहुविधा यज्ञा वितता ब्रह्मणो मुखे।
कर्मजान्विद्धि तान्सर्वानेवं ज्ञात्वा विमोक्ष्यसे॥
गीता. ४। ३२

ऐसे बहुत प्रकार के यज्ञ वेद वाणी में विस्तृत रूप से वर्णित किये गये हैं। यह सब यज्ञ कर्मों से उत्पन्न होने वाले हैं, ऐसा जानकर और तदनुसार आचरण करके [विमोक्ष्यसे] संसार बन्धन से मुक्त हो जाओगे।

वेद का यज्ञ से इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि जब विद्यार्थी को दीक्षा देकर उसे वेदाध्ययन के योग्य बनाया जाता है तब इस संस्कार को यज्ञोपवीत अथवा उपनयन संस्कार कहा जाता है। दुर्भाग्य है कि आज इस महत्वपूर्ण संस्कार की सर्वथा उपेक्षा की जा रही है और ब्राह्मण परिवारों में भी इसे केवल नाममात्र के लिये ही किया जाता है। संस्कार करवाने वाले अधिकांश पुरोहित स्वयं ही इसका महत्व भली प्रकार नहीं समझते हैं अतः उनके द्वारा इसके विषय में विशेष प्रकाश डालने का प्रश्न ही कहाँ उठता है। वास्तव में वेद एवं यज्ञ हमारे धर्म तथा हमारी संस्कृति के आधार हैं और इनकी उपेक्षा करके हम अपने धर्म की रक्षा नहीं कर सकते।

हमें यह भली प्रकार समझ लेना चाहिये कि प्रत्येक संस्कार में वेदमन्त्रों से विधिवत् यज्ञ किया जाना परमावश्यक है। इसके बिना कोई संस्कार पूर्ण नहीं हो सकता, जबकि आजकल तो विवाह जैसे महत्वपूर्ण संस्कार में भी वेद एवं यज्ञ की सर्वथा उपेक्षा की जाती है।

यहाँ यह स्पष्ट करना भी अत्यन्त आवश्यक है कि केवल वेद मन्त्रों द्वारा किया गया यज्ञ ही वास्तविक यज्ञ है। किसी पुस्तक के श्लोकों अथवा रामचरित मानस की चौपाइयों से किये गये यज्ञ का कोई महत्व नहीं है। ऐसा करना तो केवल हमारे अज्ञान एवं पतन का प्रतीक है।

शतपथ ब्राह्मण में अनेक स्थानों पर कहा गया है कि यज्ञ में मानुषी भाषा का प्रयोग अनुचित तथा अशुभ है।

स्वयं वेद में ही कहा गया है कि चारों वेद यज्ञ रूपी वृषभ के सींग हैं और यह यज्ञ मन्त्र, ब्राह्मण तथा कल्प द्वारा तीन ओर से बंधा हुआ है।

इसका तात्पर्य यह है कि ब्राह्मण तथा कल्प ग्रन्थों में उल्लिखित पद्धति के अनुसार केवल वेद मन्त्रों से ही यज्ञ किया जाना चाहिये, किसी अन्य प्रकार से नहीं।

वामदेवः ऋषिः। यज्ञपुरुषो देवता। विराडार्षी त्रिष्टुप् छन्दः। धैवतः स्वरः।

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा

द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य।

त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति

महो देवो मर्त्याँ आ विवेश।

यजु. १७। ९१ ऋग्. ४। ५८। ३

गोपथ ब्राह्मण पूर्व २। १६ के अनुसार इस मन्त्र में यज्ञ पुरुष के भिन्न-भिन्न अवयवों का वर्णन निम्न प्रकार किया गया है।

(चत्वारि अस्य श्रृङ्गाः) चत्वारि श्रृङ्गाः इति एते वै वेदाः उक्ताः। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद ये इसके चार सींग अथवा शीर्षस्थ अवयव हैं। (त्रयः अस्य पादाः) त्रयः पादाः इति सवनानि एव) इसके तीन पाद अथवा चरण हैं; प्रातः सवन् माध्यन्दिन सवन् तथा सायं सवन अर्थात् प्रातःकाल में किया जाने वाला यज्ञ, मध्याह्न में किया जाने वाला यज्ञ तथा सायं काल में किया जाने वाला यज्ञ, यही इसके तीन पाद अथवा चरण हैं। (द्वे शीर्षे) द्वे शीर्षे इति ब्रह्मौदन प्रवर्ग्यौ एव। ब्रह्मौदन तथा प्रवर्ग्य (यज्ञाग्नि) इसके दो शिर हैं। (सप्त हस्तासः अस्य) सप्त हस्तासः अस्य इति छन्दांसि एव) गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप् बृहती, पङ्क्ति, त्रिष्टुप् तथा जगती वेद के ये प्रमुख सात छन्द इसके सात हाथ हैं क्योंकि इन्हीं से समस्त क्रियायें होती है।

(त्रिधा बद्धः)त्रिधा बद्ध इति मन्त्रः कल्पः ब्राह्मणम्। मन्त्र, कल्प तथा ब्राह्मण से यह तीन प्रकार से बंधा हुआ, (वृषभः रोरवीति) एषः वृषभः ह वै तत् रोरवीति। सुखों की वर्षा करने वाला यह श्रेष्ठ यज्ञ पुरुष प्रिय एवं कल्याणकारी शब्द करता है।

(यत् यज्ञेषु शस्त्राणि ऋग्भिः, यजुर्भिः सामभिः ब्रह्मभिः शंसति इति)यज्ञों में स्तोत्र एवं ऋग्वेद,यजुर्वेद,तथा सामवेद एवं अथर्ववेद के मन्त्रों का जो पाठ किया जाता है, वही इस बलवान् यज्ञ पुरुष का शब्द है।

(महः देवः मर्त्यान् आविवेश) इति एषः ह वै महान् देवः यद् यज्ञः एषः मर्त्यान् आविवेश। यह यज्ञ रूपी महान् पूजनीय देव सभी मरण धर्मा प्राणियों में सब ओर से व्याप्त है अर्थात् यह महान् देव समस्त प्राणियों का कल्याण करने वाला है।

वृषभ शब्द ''वृषु सेचने'' धातु से बना है। अतः यहाँ इसका अर्थ है सुख की वर्षा करने वाला। इसके अतिरिक्त वृषभ का अर्थ श्रेष्ठ तथा बलवान भी होता है।

स्पष्ट है कि समस्त प्राणियों में व्याप्त होने वाले, सब पर सुखों की वर्षा करने वाले इस यज्ञ में किसी प्राणी का वध नहीं किया जा सकता और न ही किसी प्राणी को कोई पीड़ा ही दी जा सकती है। इसीलिये यज्ञ को अध्वर अर्थात् समस्त प्रकार की हिंसा से रहित कहा जाता है। जो मूर्ख यज्ञ में हिंसा किये जाने की बात कहते हैं, उन्हें इस मन्त्र को ध्यान पूर्वक पढ़ना चाहिये।

निरुक्त परिशिष्ट १३। ७ में यास्काचार्य जी ने इस मन्त्र का अर्थ निम्न प्रकार किया है-

(चत्वारि श्रृङ्गेति वेदा वा एते उक्ताः) चार वेद ही इसके चार सींग हैं, (त्रयो अस्य पादाः इति सवनानि त्रीणि) यज्ञ के तीन सवन ही इसके तीन पाद है, (द्वे शीर्षे प्रायणीयोदयनीये) प्रायणीय अर्थात् यज्ञ के प्रारम्भिक कार्य तथा उदयनीय अर्थात् यज्ञ के अन्तिम कार्य इसके दो सिर हैं। (सप्त हस्तासः सप्त छन्दांसि) गायत्री आदि सात छन्द इसके सात हाथ हैं।

(त्रिधा बद्धः त्रेधा बद्धः मन्त्रब्राह्मण कल्पैः) मन्त्र, ब्राह्मण तथा कल्प से तीन प्रकार से बंधा हुआ (वृषभो रोरवीति) सुख की वर्षा करने वाला यह श्रेष्ठ देव शब्द करता है, (रोरवणमस्य सवनक्रमेण ऋग्भिर्यजुर्भिः सामभिः) सवनों के क्रम से ऋग्, यजु तथा साम मन्त्रों का पाठ ही इसका शब्द करना है। यज्ञ रूपी यह महान् देव मनुष्यों में प्रविष्ट होता है, अर्थात् मनुष्यों द्वारा यज्ञ किया जाता है, यजन किया जाता है।

चारों वेदों के मन्त्र तीन प्रकार के होते हैं ऋग्, यजु, तथा साम। इनमें (ऋग्भिः शंसन्ति) ऋचाओं से परब्रह्म के गुणों का गान करते है, (यजुर्भिर्यजन्ति) यजुः संज्ञक मन्त्रों से यज्ञ किया जाता है तथा (सामभिः स्तुवन्ति) गेय साम मन्त्रों से स्तुति, अर्चना तथा उपासना की जाती है।

यज्ञ को मन्त्र, कल्प तथा ब्राह्मण इन तीन से बंधा हुआ इसलिये कहा गया है कि यज्ञ में मन्त्रों का प्रयोग होता है और कल्प तथा ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार ही यज्ञ में मन्त्रों का विनियोग एवं यज्ञ की सभी क्रियायें सम्पन्न की जाती हैं।

इस मन्त्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञ केवल वेद मन्त्रों से ही किया जाना चाहिये। वास्तव में यज्ञों की शक्ति वेद मन्त्रों में ही निहित है। अतः यज्ञ में योग्य विद्वानों द्वारा मन्त्रों का विधिवत पाठ किया जाना परम आवश्यक है।

महर्षि पतञ्जलि द्वारा महाभाष्य अध्याय। १। में इस मन्त्र का निम्नाङ्कित प्रसिद्ध अर्थ किया गया है–

नाम, आख्यात, उपसर्ग एवं निपात रूपी चार सींगों वाला, भूत, भविष्यत् वर्तमान रूपी तीन पादों वाला, नित्य-अनित्य शब्द रूपी दो शिरों वाला, क्रिया विभक्तियों रूपी सात हाथों वाला तथा छाती, कण्ठ एवं शिर इन तीन स्थानों पर तीन प्रकार से बंधा हुआ सब पर सुखों की वर्षा करने वाला शब्द रूपी यज्ञ पुरुष मधुर कल्याणकारी ध्वनि करता है तथा समस्त प्राणियों में व्याप्त रहता है।

श्रेष्ठ सदाचारी मन्त्रदृष्टा महर्षियों द्वारा किये गये मन्त्रों के अर्थ कितने सुन्दर कितने चमत्कारिक तथा महान् हो सकते हैं, यह अर्थ इसका एक महत्वपूर्ण उदाहरण है। इसके विपरीत मूर्खों द्वारा किये गये अर्थ कितने हास्यास्पद एवं निकृष्ट हो सकते हैं, इसका उदाहरण है कुछ विदेशियों द्वारा किया गया इस मन्त्र का निम्नाङ्कित अर्थ–

दो शिरों, चार सींगों, तीन पैरों तथा सात हाथों वाला, तीन ओर से बंधा हुआ महान् बैल सब प्राणियों पर गर्जन करता है।

जपयज्ञ

पूर्व उल्लिखित यज्ञों के अतिरिक्त श्रद्धा, भक्ति, ध्यान एवं निष्ठापूर्वक अनन्य भाव से ओ३म् एवं गायत्री महामन्त्र का जप करना भी अत्यन्त श्रेष्ठ यज्ञ माना गया है। जप यज्ञ की उत्कृष्टता बताते हुये भगवान कृष्ण ने कहा है।

महर्षीणां भृगुरहं गिरामस्म्येकमक्षरम्।
यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि स्थावराणां हिमालयः॥

गीता. १०। २५

महर्षियों में मैं भृगु, वाणी में एकाक्षर अर्थात् ओंकार, यज्ञों में जपयज्ञ तथा पर्वतों में हिमालय हूँ।

देव यज्ञ

जिन यज्ञों में आहवनीय अग्नि में घृत आदि की आहुति देकर देवों का यजन पूजन किया जाता है उन्हें देव यज्ञ कहते हैं।

अग्नि में देवों के लिये द्रव्यों की आहुति देना यज्ञ है। द्रव्यं देवता त्यागः। कात्यायन श्रौत. १। २। २

यज्ञ का पर्यायवाची 'मख' शब्द 'मह' पूजायाम् धातु से ह का लोप होकर ख प्रत्यय लगने से बनता है।

मख महान्ति अत्र देवता। इसमें देवताओं का पूजन होता है, उन्हें हवि अर्पण करके सम्मानित किया जाता है।

गोपथ ब्राह्मण ५। २८ में, ७ पाकयज्ञ, ७ हविर्यज्ञ तथा ७ सोमयज्ञ, इस प्रकार कुल २१ प्रकार के यज्ञों का उल्लेख है।

वेदों में यज्ञ की प्रक्रिया का वर्णन नहीं है। यज्ञों का विस्तृत विधान एवं उसमें मन्त्रों का विनियोग ब्राह्मण ग्रन्थों, पूर्व मीमांसा तथा कल्पसूत्रों में उपलब्ध होता है। कल्पसूत्र के तीन अवयव हैं–

श्रौत्र सूत्र, गृह्य सूत्र तथा धर्मसूत्र। गृह्य सूत्रों में प्रमुख रूप से विभिन्न संस्कारों का वर्णन किया गया है।

मुण्डकोपनिषद्, महाभारत तथा वायु पुराण के अनुसार यज्ञों का प्रवर्त्तन त्रेता युग के आरम्भ से हुआ।

त्रेतायुगमुखे यज्ञस्यासीत् प्रवर्त्तनम्।

वायु पु. ५७। ८६

यज्ञ शब्द का अर्थ

यज्ञ शब्द 'यज' धातु से बना है, जिसके अर्थ हैं देव पूजन, संगतिकरण, तथा दान। संगतिकरण का तात्पर्य परमात्मा से आत्मा की संगति करना, उसका सान्निध्य प्राप्त करना तथा लोक में श्रेष्ठ पुरुषों का साथ करना, उनके साथ समागम करना एवं संगठित होना है। निरुक्त ३। १६ में यज्ञ का निर्वचन निम्न प्रकार किया गया है।

(क) प्रख्यातं यजतिकर्मेति नैरुक्ताः। इसका प्रसिद्ध अर्थ यजनार्थक है। इसमें यजन किया जाता है, अतः इसे यज्ञ कहते हैं।

(ख) याच्ञो भवतीति वा। इसके द्वारा किसी अभीष्ट वस्तु को याचना की जाती है। याच्ञ-याज्ञ-यज्ञ।

(ग) यजुरुक्तो भवतीति वा। यजुर्वेदीय मन्त्रों के उच्चारण से इसमें आहुतियाँ दी जाती हैं।

(घ) बहुकृष्णाजिन इत्यौपमन्यवः। यज्ञ में बैठने के लिये कृष्ण मृग के चर्म बिछाये जाते हैं अतः अजनि अर्थात् मृग चर्म युक्त होने से इसे यज्ञ कहा जाता है।

(ङ) यजूंष्येन नयन्तीति वा। इस शुभ कर्म को यजुर्मन्त्र ले जाते हैं अर्थात् इसे अन्त तक सम्पन्न करवाते हैं, अतः इसे यज्ञ कहा जाता है। यजुर्नय-यज् न-यज्ञ।

वेदों में यज्ञ के लिये निम्नाङ्कित १५ नामों का प्रयोग किया गया है।

यज्ञः, वेनः, अध्वरः, मेधः, विदथः, नार्यः, सवनम्, होत्रा, इष्टिः, देवताता, मखः, विष्णुः, इन्दुः, प्रजापतिः घर्मः,

निघण्टु ३ । १७

जिन यज्ञों का उल्लेख वेदमन्त्रों एवं ब्राह्मण ग्रन्थों में उपलब्ध है, उन्हें श्रौत यज्ञ कहते हैं तथा जिन यज्ञों का विधान गृह्य सूत्रों में है उन्हें स्मार्त यज्ञ कहते हैं। (मनुस्मृति १२ । ८६ में कहा गया है। "श्रेयस्करतरं ज्ञेयं सर्वदा कर्म वैदिकम्" ।)

अग्नियाँ

यज्ञ में स्थापित की जाने वाली तीन अग्नियों का सम्बन्ध आधिदैविक एवं आध्यात्मिक जगत से निम्न प्रकार है।

अग्नि	आधिदैविक	आध्यात्मिक
(१) गार्हपत्य	पृथिवी स्थानीय अग्नि	वीर्यरूपी अग्नि
(२) दक्षिणाग्नि	अन्तरिक्षस्थ अग्नि अथवा विद्युत	जठराग्नि
(३) आहवनीय	सूर्य रूपी अग्नि अथवा सौर अग्नि	वीर्य का सूक्ष्म रूप जो सुषुम्ना नाडी से ऊपर उठता हुआ ब्रह्म बिन्दु अथवा ब्रह्मवारि के रूप में ब्रह्मगुहा में क्षरित होता है, जिसके ओज से शरीर कान्तिमान होता है, मस्तिष्क आदि की सूक्ष्म क्रियायें तीव्र एवं पुष्ट होती तथा ज्ञान का प्रकाश होता है। इसे पवमान

सोम भी कहते हैं। ऊर्ध्व-
रेता योगीजन प्राणायम
से यह क्रिया सम्पन्न
करते है।

जठराग्नि के लिये गीता में कहा गया है।

अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणिनाम् देहमाश्रितः।
प्राणापान समायुक्तः पचाम्यन्नं चतुर्विधम्॥

गीता. १५।१४

मैं समस्त प्राणियों के शरीर में स्थित एवं प्राण तथा अपान से समायुक्त वैश्वानर अग्नि के रूप में चारों प्रकार के अन्नों का पाचन करता हूँ।

अग्निहोत्र अथवा देव यज्ञ–अग्नये हूयते यस्मिन् तद् अग्निहोत्रम्। जिस कर्म में अग्नि के लिये होम किया जाता है, वह अग्निहोत्र है। श्रौत कर्मों में सबसे सूक्ष्म अग्निहोत्र है जिसे यावज्जीवन नित्य प्रति करने का विधान है। इसे देव यज्ञ भी कहते हैं। शतपथ ब्राह्मण १२।४।१।१ में कहा है–

"एतद्वै जरामर्यं सत्रं यदग्निहोत्रं जरया वा ह्येवास्मान्मुच्यन्ते मृत्युना वा।" यह अग्निहोत्र जरामर्यं सत्र है, अर्थात् इसका समापन या तो वृद्धावस्था से अत्यन्त शिथिल हो जाने पर या फिर मृत्यु होने पर ही होता है। "यावज्जीवमग्निहोत्रं जुहोति" पुरुष को अपने जीवन काल में स्वस्थ रहते हुये नित्यप्रति अग्निहोत्र करना चाहिये।

अग्निहोत्र सायं प्रातः दो बार किया जाना चाहिये। अग्निहोत्र कर्म का प्रारम्भ सायंकाल से होता है। अग्निहोत्र के लिये अभ्याधान कर्म मध्याह्न तक चलता है, उसके पश्चात् प्रथम अग्निहोत्र कर्म सायंकाल में किया जाता है,

जिसके उपरान्त सायं प्रातः का क्रम चलता रहता है।

वस्तुतः अग्निहोत्र प्रलय एवं सृष्टि, रात्रि एवं दिन तथा नित्य-प्रति सोने एवं जागने की क्रिया का प्रतिनिधित्व करता है। जिस प्रकार आधिदैविक जगत् में नित्यप्रति दिखायी देने वाला अहोरात्र का कालक्रम सबसे छोटा है, उसी प्रकार अग्निहोत्र समस्त श्रौत्रकर्मों में नित्य प्रति किया जाने वाला सबसे छोटा अनुष्ठान है।

"अग्नये प्रजापतये इति सायं, सूर्याय प्रजापतये इति प्रातः" अग्नि प्रजापति के लिये सायंकाल तथा सूर्य प्रजापति के लिये प्रातः काल हवन किया जाता है। इस कर्म का फल गो.ब्रा. पू. ३। १६ में इस प्रकार बताया गया है (तेषां यः द्विःअजुहोत् सःआर्ध्नोत् सः भूयिष्ठः अभवत् प्रजया च इतरौ श्रिया च इतरौ अत्याक्रामत्) उनमें जो दो बार, दो देवता के लिये होम करता था वह अत्यन्त समृद्ध हुआ तथा सन्तान एवं धनधान्य में अन्य सभी से बढ़ गया।

अग्निहोत्र का समय

उदिते ऽनुदिते चैव समयाध्युषिते तथा।
सर्वथा वर्तते यज्ञ इतीयं वैदिकी श्रुतिः॥

मनु २। १५

(उदिते) सूर्योदय के पश्चात् (अनुदिते) सूर्योदय के पूर्व किन्तु नक्षत्रों के रहते हुये, (समयाध्युषिते) नक्षत्रों के अस्त हो जाने के पश्चात् तथा सूर्योदय के पूर्व, इन तीन कालों में प्रातः कालीन अग्निहोत्र तथा सूर्यास्त के पश्चात् सायं कालीन अग्निहोत्र किया जाना वेदानुसार है।

उक्त तीनों कालों में इच्छानुसार किसी एक समय का संकल्प करके तदनुसार निश्चित समय पर ही अग्निहोत्र करना चाहिये। निर्धारित काल का उल्लंघन निन्दनीय दोष माना जाता है।

अग्निहोत्रं च जुहुयात् आद्यन्ते द्युनिशोः सदा ।
दर्शेन चार्धमासान्ते पौर्णमासेन चैव हि ।।

मनु ४ । २५

दिन और रात्रि के आदि तथा अन्त में अर्थात् प्रातःकाल एवं सायंकाल अग्नि होत्र करना चाहिये । इसके अतिरिक्त अर्धमास के अन्त में अमावास्या तथा पूर्णमासी को यज्ञ करना चाहिये ।

होम द्रव्य

यद्यपि श्रौत सूत्रों में अग्नि होत्र के लिये हव्य द्रव्यों में दुग्ध का प्रमुख स्थान है, तथापि घृत, दही, यवागू, (तण्डुल) चावल आदि का भी विधान मिलता है।

यवाग्वा ग्रामकामः तण्डुलैर्बलकामः ।
दध्नेन्द्रियकामः घृतेन तेजस्कामः ।।

का. श्रौत. १५ । १५ । २१ । २५

इससे स्पष्ट है कि तेज की कामना करने वालों को घृत से हवन करना चाहिये।

अग्निहोत्र के विषय में शतपथ ब्राह्मण ११ । ३ । १ में महर्षि याज्ञवल्क्य तथा महाराज जनक का एक महत्वपूर्ण संवाद निम्न प्रकार है ।

जनक ने याज्ञवल्क्य से पूछा–हे याज्ञवल्क्य ! क्या तुम अग्निहोत्र जानते हो ? जानता हूँ सम्राट ! वह क्या है ? दुग्ध ही है। यदि दुग्ध न मिले तो किससे होम करे ? जौ और (व्रीहि) चावल से। यदि जौ और चावल न मिले तो किससे होम करे ? जो अन्य ओषधियाँ अर्थात् अन्न है, उनसे । यदि अन्य ओषधियाँ भी न मिलें तो किससे होम करे ? जंगली ओषधियों से । यदि जंगल की ओषधियाँ न हों तो किससे होम करे ? वनस्पतियों से अर्थात् वृक्षों के फलों से । यदि वनस्पतियों के फल भी न मिलें तो किससे

होम करे ? जलों से होम करे। यदि जल भी न मिले तो किससे होम करे ? तब याज्ञवल्क्य ने कहा कि यदि कुछ भी उपलब्ध न हो तो सत्य का श्रद्धा में होम करे। इस पर जनक ने सन्तुष्ट होकर कहा—हे याज्ञवल्क्य ! तुम अग्नि होत्र जानते हो, मैं सौ गौवें देता हूँ। यहाँ पर ब्राह्मण में कहा गया है "तेज एव श्रद्धा सत्यमाज्यम्" श्रद्धा तेज अथवा अग्नि है और सत्य घृत है। इसलिये सत्य से श्रद्धा बढ़ती है।

सृष्टि में यज्ञ का स्थान एवं महत्व

सृष्टि के क्रम में यज्ञ का स्थान निम्न प्रकार है।

(१) ब्रह्म से आकाश उत्पन्न हुआ (२) आकाश से वायु (३) वायु से अग्नि अथवा ज्योति (४) अग्नि से जल (५) जल से पृथिवी (६) पृथिवी से अन्न (७) अन्न से प्राण (८) प्राण से मन (९) मन से वाणी (१०) वाणी से वेद तथा (११) वेद से यज्ञ।

तेषां यज्ञः एव परार्ध्यः। गोपथ पू. १। ३७ इनमें यज्ञ ही सर्वश्रेष्ठ है।

यज्ञ एक अत्यन्त वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिससे हम उन देवों की पुष्टि एवं संवर्धन करते है जिन पर हमारा जीवन आधारित है।

देव शब्द का अर्थ

देव शब्द दिवु धातु से बना है जिसके अर्थ है—क्रीडा-विजिगीषा व्यवहार, द्युति, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कान्ति, तथा गति।

निरुक्त ७। १५ में देव शब्द का निर्वचन निम्न प्रकार किया गया ... द्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्युस्थानो भवतीति वा।' दान, दीपन द्योतन करने अथवा द्युस्थान में स्थित होने से देव होता ... यह है कि जो हमें दान देते हैं, जीवन के लिये आवश्यक भन्न वस्तुयें प्रदान करते हैं, प्रकाश देते है तथा अज्ञान का अन्ध-

कार दूर करते हैं; जो स्वयं प्रकाशमान है अथवा जो द्युलोक में स्थित हैं वे देव कहे जाते हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद् ३ । ९ । २ में देवों का विवरण निम्न प्रकार दिया गया है।

संख्या		नाम
८	–	वसु (पृथिवी, अग्नि, अन्तरिक्ष, वायु, द्युलोक, सूर्य, चन्द्रमा तथा नक्षत्र।
११	–	रुद्र (दश प्राण एवं जीवात्मा)
१२	–	आदित्य (संवत्सर के बारह मास)
१	–	इन्द्र
१	–	प्रजापति।
योग = ३३		

इन्द्र का अर्थ है—(विद्युत, सूर्य, आत्मा तथा परमात्मा)

प्रजापति का अर्थ है—(यज्ञ, प्राण, आत्मा तथा परमात्मा)

यहाँ जल का उल्लेख सम्भवतः इसलिए नहीं किया गया है कि जल पृथिवी का ही भाग है जैसा कि छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है "पृथिव्या आपो रसः।" पृथिवी का रस जल है।

देवों का विस्तृत विवरण लेखक की पुस्तक 'यजुर्वेद-अन्तिम अध्याय-ईशावस्योपनिषद्' में दिया गया है।

देव शब्द से स्वार्थ (स्व+अर्थ) अपने अर्थ में तल् प्रत्यय करने से देवता शब्द सिद्ध होता है। यो देवः स देवता अर्थात् जो देव है वही देवता है।

इस विषय में यजुर्वेद का निम्नाङ्कित मन्त्र महत्वपूर्ण है।

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता

वसवो देवता रुद्रा देवताऽऽदित्या देवता मरुतो देवता

विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो

देवता ॥

यजु. १४ । २०

मन्त्र में निम्नाङ्कित देवताओं का उल्लेख है,

अग्नि देवता, वायु देवता, सूर्य देवता, चन्द्रमा देवता, (वसव: देवता:) आठ वसु अर्थात् अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य द्यौ, चन्द्रमा तथा नक्षत्र, (रुद्रा: देवता:) ग्यारह रुद्र अर्थात् रुलाने वाले, दश प्राण तथा जीवात्मा, जो शरीर से निकलने के समय प्रियजनों को रुलाते है, (आदित्या: देवता:) वर्ष के बारह मास, मरुत देवता, विश्वेदेव देवता, बृहस्पति देवता, इन्द्र देवता, तथा (वरुण: देवता) तथा वरुण देवता।

वरुण का अर्थ जल,मेघ तथा सूर्य भी होता है। इसके अतिरिक्त अनेक मन्त्रों में इस आशय का अलंकारिक वर्णन है कि वरुण के दूत समस्त मनुष्यों के कर्मों पर सतत् दृष्टि रखते हैं तथा उनके द्वारा किये गये दुष्कर्मों के कारण उन्हें वरुण के पाशों में बांधते हैं।

बृहस्पति का अर्थ महती वेद वाणी के रक्षक तथा सबसे महान् रक्षक अथवा स्वामी अर्थात् परमात्मा भी है।

विश्वेदेव संभवत: उन देवताओं का सामूहिक नाम है जो प्राणि

मात्र का कल्याण करते है तथा उन्हें सुख देते है जैसे यज्ञ तथा दिव्य गुणों से युक्त विद्वान् ।

यहां यह भी ध्यान मे रखना आवश्यक है कि अग्नि, वायु, इन्द्र, बृहस्पति आदि ब्रह्म के भी प्रसिद्ध नाम है ।

शत. ब्रा. १४ । ६ । ११ । २ में कहा गया है परोक्षप्रिया हि देवाः' देव परोक्ष प्रिय होते है । वे हमारे सामने प्रत्यक्ष उपस्थित होकर भोजन आदि ग्रहण नहीं कर सकते अतः उन्हें पुष्ट करने के लिये समस्त पुष्टि कारक पदार्थ उन्हें सूक्ष्म रूप में ही दिये जा सकते है । इसीलिये वेदो ने यज्ञ का प्रतिपादन किया क्योंकि अग्नि में यह अद्वितीय शक्ति है कि वह विभिन्न वस्तुओं को सूक्ष्म बनाकर उन्हें वायुमण्डल में फैला देती है जिससे कि वह न केवल अत्यधिक प्रभावकारी हो जाती हैं प्रत्युत उनका प्रभाव क्षेत्र भी बढ़ जाता है । एक स्थान पर घृत अथवा अन्य सुगन्धित सामग्री रखी होने पर उसकी सुगन्ध केवल निकटस्थ व्यक्तियों द्वारा ही अनुभव की जा सकती है किन्तु जब उसी घृत की आहुति अग्नि मे दी जाती है तो उसकी सुगन्ध दूर दूर तक फैल जाती है । यही स्थिति अनेक अन्य वस्तुओं की है । लाल मिर्चें यदि पास में रखी हों तो भी उससे कोई कठिनाई नहीं होती किन्तु यदि इन मिर्चों को अग्नि में डाल दिया जाय तो इनका दुष्प्रभाव दूर दूर तक अनुभव किया जा सकता है । पेट्रोल तथा डीजल आदि का धुआं इसका स्पष्ट प्रमाण है, जिसे हम प्रतिदिन देखते तथा अनुभव करते हैं ।

यह निर्विवाद है कि श्रेष्ठ आहुत द्रव्यों के जीवनोपयोगी गुण अग्नि द्वारा सूक्ष्म अवस्था में परिवर्तित होकर वायु एवं वृष्टि जल को पवित्र करते है, वनस्पतियों तथा अन्न को पुष्ट करते है एवं सूर्य तथा चन्द्र आदि की किरणों को भी प्रभावित करते हैं और तब ये किरणें हमारे जीवन पर अनुकूल प्रभाव डालती हैं ।

अग्नौ प्रस्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।
आदित्याज्जायते वृष्टिर्वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः ।।

मनु स्मृति ३ । ७६

(अग्नौ सम्यग् प्रस्ता आहुतिः) अग्नि में विधि पूर्वक डाली गयी घृत आदि पदार्थों की आहुति, (आदित्यम् उपतिष्ठते) सूर्य को प्राप्त होती है, अर्थात् सूर्य की किरणों के साथ मिलकर वातावरण को प्रभावित करती है। (आदित्यात् जायते वृष्टिः) सूर्य के प्रभाव से वृष्टि होती है, (वृष्टेः अन्नम्) वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है और (ततः प्रजाः) उस अन्न से प्रजायें अर्थात् समस्त प्राणी उत्पन्न होते हैं तथा जीवित रहते हैं। (अन्न से वीर्य तथा वीर्य से सन्तान)

इसीलिये अग्नि को हव्यवाहक अर्थात् हवि ले जाने वाला कहा जाता है। अग्नि के माध्यम से ही हम देवों को उनका पुष्टिकारक भोजन उपलब्ध कराते हैं। इसी कारण अग्नि को देवताओं का मुख कहा जाता है। 'मुखं त्वमसि देवानाम्' हे अग्नि ! तुम देवताओं का मुख हो।

ब्राह्मण में भी कहा गया है, "अग्निर्वै देवानां मुखम्"।

यज्ञ के माध्यम से देवताओं को भोजन प्राप्त होता है। अतः यज्ञ को देवताओं का अन्न कहा जाता है।

पर्यावरण पर यज्ञ का प्रभाव

यज्ञ से होने वाली वायु की शुद्धता तथा शरीर, मन एवं बुद्धि पर पर उसका गुणकारी प्रभाव अपने घर में छोटा सा यज्ञ करके किसी भी समय अनुभव किया जा सकता है, इसके लिये किसी बड़े तर्क अथवा प्रमाण की आवश्यकता नहीं है। यज्ञ से शरीर एवं मन सहित सभी इन्द्रियाँ पवित्र होती हैं, शरीर नीरोग

होता है; जीवन में हर्ष, आत्मविश्वास तथा उत्साह का संचार होता है और सब प्रकार की कामनाओं की पूर्ति होती है।

संकुचित स्वार्थ एवं प्रकृति के शोषण पर आधारित वैज्ञानिक एवं औद्योगिक प्रगति के भीषण दुष्परिणामों को अनुभव करने के बाद ही आज हम पर्यावरण की शुद्धता की ओर जागरूक हुये हैं किन्तु वेद ने तो सृष्टि के आदिकाल में ही पर्यावरण के महत्व पर बल देते हुये यज्ञों का न केवल विधान किया था बल्कि उन्हें श्रेष्ठतम कर्म कहा था। इसीलिये यजुर्वेद का प्रथम मन्त्र ही अन्न, जल एवं पर्यावरण की शुद्धता, सदाचार, स्वच्छ सामाजिक व्यवस्था एवं पशुओं के संरक्षण के लिये यज्ञ का विधान करता है।

यज्ञ में घृत की आहुति का महत्व तथा यज्ञ का फल बताते हुये कहा गया है—

> आज्येन जुहोति। तेजो वा ऽआज्यं तेजसैवा-
> स्मिंस्तत्तेजो दधात्याज्येन जुहोत्येतद्वै देवानां प्रियं
> धाम यदाज्यं प्रियेणैवैनान्धाम्ना समर्धयति त ऽएनं
> समृद्धाः समर्धयन्ति सर्वैः कामैः।

शतपथ. १३।६।२।११

घृत की आहुति देता है। (तेजो वै आज्यम्) निःसन्देह घृत तेज है। (तेजसा एव अस्मिन् तत् तेजः दधाति) तेज से ही इसमें तेज स्थापित करता है। (आज्येन जुहोति) घृत से आहुति देता है। (एतद्वै देवानां प्रियं धाम यद्आज्यं) यह जो घृत है वह देवों का प्रिय धाम है। (प्रियेण एव धाम्ना एनान् समर्धयति) इस प्रकार इन देवों को इनके प्रियधाम से ही समृद्ध करता है। (ते समृद्धाः एनं सर्वैः कामैः समर्धयन्ति) यज्ञ से समृद्ध होकर वे देव इस यज्ञ करने वाले को समस्त कामनाओं से समृद्ध करते हैं, उन्हें पूर्ण करते है।

किन्तु आज हम घृत की आहुति देने के स्थान पर पर्यावरण में पेट्रोल, डीज़ल तथा अनेक प्रकार के अन्यान्य विषैले रसायनों की निरन्तर आहुति देते हैं और यह आशा करते हैं कि हम स्वस्थ एवं सुखी रहेंगे। भला यह कैसे सम्भव है ? वास्तविकता तो यह है कि हम चाहे कितने ही बड़े-बड़े चिकित्सालयों तथा आधुनिकतम उपकरणों एवं औषधियों की व्यवस्था क्यों न कर लें, हमारा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य, हमारा भौतिक एवं आत्मिक सुख तब तक सुरक्षित नहीं रह सकता जब तक हम वैदिक नियमों के अनुसार यज्ञों द्वारा देव पूजन करके जल, वायु, पृथिवी तथा आदित्य आदि देवताओं एवं वनस्पतियों तथा अन्न आदि को पवित्र एवं पुष्ट नहीं करते और जब तक हम सामाजिक लाभ के लिये अपना थोड़ा सा स्वार्थ छोड़कर समष्टि कल्याण के लिये विविध प्रकार के यज्ञों का आयोजन नहीं करते।

आज यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम अपने धर्म एवं अपनी संस्कृति के श्रेष्ठ स्वरूप को पहचानें और उसका श्रद्धा एवं विश्वास के साथ पालन करें क्योंकि श्रद्धा एवं विश्वास के बिना कोई भी श्रेष्ठ कर्म सम्पन्न नहीं किया जा सकता।

यज्ञ के लौकिक एवं आध्यात्मिक महत्त्व को तथा प्राणिमात्र एवं पर्यावरण के लिये उससे होने वाले विभिन्न लाभों को दृष्टि में रखते हुये ही चारों वेदों द्वारा यज्ञ का प्रतिपादन किया गया है। वेदैर्यज्ञस्तायते (गोपथ पूर्व. ४ । २४)। इसीलिये कहा गया है यज्ञो वेदेषु प्रतिष्ठितः। यज्ञ वेद में प्रतिष्ठित है।

कैसी विडम्बना है कि आज हम अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिये तथा धूम्रपान आदि बुरी आदतों को सन्तुष्ट करने के लिये न केवल सिगरेट, बीड़ी प्रत्युत विभिन्न वाहनों तथा कारखानों से निकलने वाला विषैला धुआं छोड़कर पर्यावरण को दूषित करने में तो लेशमात्र भी

नहीं हिचकते किन्तु पर्यावरण को शुद्ध करने के लिये यज्ञ करने की बात कभी नहीं सोचते । नवीन विनाशकारी सभ्यता एवं तथा-कथित औद्योगिक प्रगति के दुष्परिणामों को देखकर आज अनेक पर्यावरण विशेषज्ञ कुछ शोर तो मचा रहे हैं किन्तु पर्यावरण को पवित्र करने के लिये वेद द्वारा प्रतिपादित यज्ञों की ओर देखने का भी कष्ट नहीं करते क्योंकि इसके लिये उन्हें त्याग करना पड़ेगा जब कि पर्यावरण के विषय में भाषण देकर तथा लेख आदि लिखकर उन्हें अच्छी आय होती है और प्रसिद्धि भी प्राप्त होती है, त्याग कुछ भी नहीं करना पड़ता । यह भोग परक तथा स्वार्थ लिप्त पाश्चात्य सभ्यता एवं अविद्या पर आधारित आधुनिक शिक्षा का दुष्परिणाम है ।

कुछ मूर्ख लोग कहते हैं और कुछ अपने मन में समझते हैं, कहते नहीं कि यज्ञ करने से मूल्यवान खाद्य पदार्थों एवं अन्य सामग्री का दुरुपयोग होगा, अतः यज्ञ करना उचित नहीं है । कुछ पाश्चात्य सभ्यता के दास इस विषय में पत्रिकाओं में अनर्गल लेख भी लिखते हैं और यज्ञ की बुराई करके अपने शिक्षित होने का दम्भपूर्ण प्रदर्शन करते हैं, जब कि वास्तविकता यह है कि यज्ञ करके हम किसी वस्तु का नाश नहीं करते बल्कि उसे समाज एवं प्राणिमात्र के कल्याण में लगाते हैं । वास्तव में यह एक प्रकार का क्रय-विक्रय है । जिस प्रकार हम दुकानदार को धन देकर उससे अपनी वांछित वस्तु क्रय करते हैं उसी प्रकार हम यज्ञ में आहुति डालकर समाज के लिये, स्वास्थ्य, सुख, तथा शारीरिक, मानसिक एवं आत्मिक उन्नति क्रय करते हैं ।

पूर्णा दर्वि परा पत सुपूर्णा पुनरापत ।

वस्नेव विक्रीणावहा इषमूर्जꣳ शतक्रतो ।।

यजु. ३ । ४९

(पूर्णा दर्वि) आहुति के द्रव्य से परिपूर्ण हे दर्वि ! (परापत) तुम यज्ञ की इस आहुति को लेकर देवों के पास जाओ तथा (सुपूर्णा पुनः आपत) वहाँ से श्रेष्ठ अन्न एवं रस आदि से भली प्रकार परिपूर्ण होकर हमारे पास वापस आओ। (शतक्रतो) सैकड़ों श्रेष्ठ कार्य करने वाले हे इन्द्र ! हे जगदीश्वर ! (वस्नेव वस्ना इव पण्यक्रिया इव) मूल्यवान् वस्तुओं के क्रय-विक्रय के समान इस होतव्य अर्थात् आहुति देने योग्य द्रव्य के साथ हम (इषम्) अन्न एवं (ऊर्जम्) रस, बल एवं पराक्रम का (विक्रीणावहै) आदान-प्रदान करें अर्थात् हम आपको यज्ञ की आहुतियों के द्वारा हवन किये जाने वाले पदार्थ दें और उसके बदले में आप हमें अन्न, रस तथा बल एवं पराक्रम प्रदान करें।

जैसा कि यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में कहा गया है, यज्ञ से पर्यावरण की पवित्रता के साथ साथ स्वच्छ जल की वृष्टि होती है जिससे हमें रोगों से रहित अन्न तथा पौष्टिक रस से भरे हुये फल,ओषधियाँ एवं वनस्पतियाँ प्राप्त होती हैं।

दर्वि का अर्थ है चमचा जिससे होम किये जाने वाले पदार्थ स्थाली से लिये जाते हैं और तब उनकी आहुति दी जाती है। स्थाल्याः दर्व्यादत्ते पूर्णा दर्वीति ।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हम यज्ञों के द्वारा देवों का संवर्धन करते हैं और बदले में ये देव विभिन्न विषैले जीवाणुओं एवं

कीटाणुओं रूपी असुरों तथा पिशाचों आदि से हमारी रक्षा करते हैं। शतपथ ब्राह्मण में इसका स्पष्ट उल्लेख किया गया है।

ततोऽसुरा उभयोरोषधीर्याश्च मनुष्या उपजीवन्ति याश्च पशवः कृत्ययेव त्वद्विषेणेव त्वत् प्रलिलिपुरुतंवं चिद्देवानभिभवेमेति ततो न मनुष्या आशुर्न पशव आलिलिशिरे ता हेमाः प्रजा अनाशकेन नोत्परा बभूवुः।

शतपथ. २।४।३।२

तब असुरों ने दोनों प्रकार की ओषधियां, जिनके सहारे मनुष्य जीवित रहते है तथा वे, जिनके सहारे पशु जीवित रहते हैं, को अपने कृत्यों से विषाक्त कर दिया और सोचा कि इस प्रकार हम देवों पर विजय प्राप्त कर लेंगे। उनके ऐसा करने पर न तो मनुष्य और न पशु ही कुछ खा सके और यह समस्त प्रजा न खा सकने के कारण पराजित सी हो गयी।

तद्धै देवाः शुश्रुवुः। अनाशकेन ह वाऽइमाः प्रजाः पराभवन्तीति ते होचुर्हन्तेदमासामपजिघांसामेति केनेति यज्ञेनैवेति यज्ञेन ह स्म वं तद्देवाः कल्पयन्ते यदेषां कल्प्यमासऽर्षयश्च।

शतपथ. २।४।३।३

जब देवों ने सुना कि बिना भोजन के यह प्रजा पराजित हो रही है (ते होचुः) तब उन्होंने कहा, (इदं आसाम् अपजिघांसाम इति) इस सब विष आदि को हटाना चाहिये (केन इति) कैसे? (यज्ञेन एव इति) यज्ञ के द्वारा ही। देव जो करना चाहते थे वह उन्होंने यज्ञ के द्वारा ही किया तथा महर्षियों ने भी ऐसा ही किया।

इससे स्पष्ट है कि जल वायु एवं अन्नादि ओषधियों में स्वास्थ्य के लिये हानिकारक तत्वों के उत्पन्न होने पर उनका निराकरण यज्ञ से हो सकता है तथा जिस क्षेत्र में नियमित रूप से यज्ञों का आयोजन किया जायेगा, वहाँ विभिन्न प्रकार के क्रिमि तथा अन्य हानिकारिक तत्व उत्पन्न नहीं होंगे क्योंकि वहाँ का पर्यावरण शुद्ध होगा तथा वहाँ होने वाली जल वृष्टि भी स्वच्छ एवं स्वास्थ्य वर्धक होगी, जैसा कि यजुर्वेद के प्रथम मन्त्र में ही कहा गया है।

यह स्पष्ट है कि यदि यज्ञ में प्रयोग किये जाने वाले घृत तथा अन्न आदि खाद्य पदार्थों का प्रयोग किसी एक व्यक्ति द्वारा व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये किया जायेगा तो उससे उसी व्यक्ति का लाभ होगा, जबकि इन पदार्थों की यज्ञ में आहुति देने से सहस्त्रों प्राणियों को लाभ प्राप्त होगा क्योंकि उससे पर्यावरण एवं जल वायु शुद्ध होगा तथा लोगों का आत्मिक विकास होगा। इस प्रकार यज्ञ में प्रयोग की गयी सामग्री, घृत तथा हविष्यान्न परोपकार एवं जन कल्याण के लिये प्रयुक्त होते है, नष्ट नहीं होते।

वास्तव में इन पदार्थों का देवों के लिये त्याग किया जाता है; इसीलिए जो आहुतियाँ देवों को लक्ष्य करके दी जाती हैं, उनमें यह स्पष्ट रूप से कहा जाता है कि यह अमुक देवता के लिये है, यह मेरी नहीं है। "इदं इन्द्राय–इद न मम। इदं सोमाय–इदं न मम। इद प्रजापतये–इदं न मम" आदि।

किन्तु आज पाश्चात्य सभ्यता एवं स्वार्थ के कारण हमारे मन में यज्ञ एवं हवन के प्रति आस्था, श्रद्धा एवं विश्वास का सर्वथा अभाव हो गया है जिसके कारण हमारी संस्कृति शीघ्रता से पतन

की ओर अग्रसर हो रही है। सभी प्रबुद्ध व्यक्तियों को इस पर गंभीरता से विचार करके इस शोचनीय स्थिति का निराकरण करना चाहिये।

सामान्य रूप से भी यह विचार करना आवश्यक है कि जब विभिन्न प्रकार की गन्दगी द्वारा मनुष्य ही वायु को कीटाणुओं तथा दुर्गन्धि आदि से प्रदूषित करता है, तो यज्ञ करके पर्यावरण को शुद्ध करना भी तो उसी का कर्तव्य है। ऐसा करके हम किसी पर उपकार नहीं करते, बल्कि अपने और अपनी भावी पीढ़ियों को ही लाभ पहुँचाते है और अपनी जीवनी शक्ति को नष्ट होने से बचाते हैं।

यज्ञ एवं पर्यावरण का घनिष्ठ सम्बन्ध दिखाने वाले अथर्ववेद के निम्नाङ्कित मन्त्र अत्यन्त सुन्दर है।

सं सं स्रवन्तु नद्य१: सं वाताः सं पतत्रिणः ।

यज्ञमिमं वर्धयता गिरः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ।।

अथर्व. १९ । १ । १

(सं सं स्रवन्तु नद्यः) नदियां सम्यक् रूप से बहती रहें, (सं वाताः सं पतत्रिणः) विभिन्न दिशाओं से बहने वाले वायु सम्यक् रूप से हमारे अनुकूल होकर बहते रहें, पक्षीगण उड़ते रहें, चहचहाते रहें, (इमं यज्ञं गिरः वर्धयत) तथा इस यज्ञ को वेद वाणियां अथवा हमारे द्वारा बोले गये वेद मन्त्र बढ़ायें, इस प्रार्थना के साथ, (संस्राव्येण हविषा जुहोमि) मैं संस्रावणीय अर्थात् सम्यक् रूप से बहने वाले पिघले हुये घृत तथा दुग्ध आदि पदार्थों अथवा सुख को प्रवाहित करने वाले होम द्रव्यों से आहुति देता हूं।

सं सं स्रवन्तु पशवः समश्वाः समु पूरुषाः ।

सं धान्यस्य या स्फातिः संस्राव्येण हविषा जुहोमि ।।

अथर्व. २ । २६ । ३

(संस्राव्येण हविषा जुहोमि) सम्यक् रूप से बहने वाले आज्य तथा दुग्ध आदि अथवा सुख का संचार करने वाले हव्य द्रव्यों से आहुति देता हूँ,यज्ञ करता हूँ जिससे कि संसार में(पशवः सं स्रवन्तु) गो आदि पशु सुख पूर्वक विचरण करें, अश्व आदि वेगवान् पशु सम्यक् रूप से विचरण करें, (सम् उ पूरुषाः) पुरुष सुख पूर्वक इच्छानुसार (रोग एवं भय से मुक्त होकर) विचरण करें, (सं धान्यस्य या स्फातिः) तथा देश में धान्य अर्थात् विविध प्रकार के अन्नों के उत्पादन में जो वृद्धि हो, वह सम्यक् रूप से हो ताकि समस्त प्राणियों को प्रचुर मात्रा में अन्न उपलब्ध हों ।

सामाजिक पक्ष में (संस्राव्येण हविषा) का अर्थ 'सबके द्वारा सम्यक् रूप से एकत्र की गयी उत्तम हवि से' है । भाव यह है कि सब लोग मिलकर पारस्परिक सहयोग रूपी संस्राव अथवा सुप्रवाह से साधन एकत्र करके यज्ञ करें ।

यज्ञ से नीरोगिता एवं समृद्धि की प्राप्ति

वेदमन्त्रों के साथ शास्त्रोक्त विधि से किये गये यज्ञ से एक विशेष प्रकार के दिव्य वातावरण की उत्पत्ति होती है तथा यज्ञ स्थल पर उपस्थित सभी व्यक्तियों को पारलौकिक आनन्द की स्पष्ट अनुभूति होती है । इस कथन की सत्यता यज्ञ का आयोजन करके कभी भी देखी जा सकती है । नित्य प्रति हवन करने से नीरोगिता, मन की शुद्धि, बुद्धि की पवित्रता, सुख, सौभाग्य,

अभ्युदय एवं निः श्रेयस, सरलता से प्राप्त किया जा सकता है।

इसमें सन्देह नहीं कि विद्वान् ऋत्विजों द्वारा विधि पूर्वक वेद मन्त्रों से सम्पन्न करवाये गये यज्ञों से अनेक कामनाओं की पूर्ति होती है तथा देवत्व एवं आत्मोत्कर्ष की प्राप्ति होती है, जैसा कि मनुस्मृति में कहा गया है।

स्वाध्यायेन व्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्यया सुतैः ।
महायज्ञैश्च यज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते तनुः ॥

मनु. २ । २८

वेदादि शास्त्रों के स्वाध्याय से, यम नियम आदि व्रतों के पालन से, हवन तथा यज्ञ आदि करने से, (त्रै विद्येन) त्रयी विद्या अर्थात् चारों वेदों के अध्ययन से, (इज्यया) पक्षेष्टि अर्थात् दर्शपौर्णमास यज्ञ करने से (सुतैः) ज्ञानवान एवं चरित्रवान पुत्र से, (महा यज्ञैः) पंच महा यज्ञों से, तथा वेद विहित यज्ञों के अनुष्ठान से (इयं तनुः) यह मनुष्य शरीर ब्राह्मी अर्थात् ब्रह्म प्राप्ति के योग्य हो हो जाता है।

पंचमहायज्ञ निम्न प्रकार हैं–

(१) **ब्रह्मयज्ञ**–स्वाध्याय, सन्ध्योपासन, ओ३म् एवं गायत्री का जप तथा योग द्वारा परमात्मा की उपासना ।

स्वाध्यायो वै ब्रह्म यज्ञः । शतपथ ब्राह्मण ।

(२) **देवयज्ञ**–अग्निहोत्र एवं हवन आदि ।

(३) **पितृयज्ञ**–माता, पिता, आचार्य एवं अन्य वृद्ध जनों की सेवा तथा उन्हें हर प्रकार से सुखी एवं सन्तुष्ट करना ।

(४) **बलिवैश्व देव**–१. निर्धन, पतित, गम्भीर रूप से बीमार, एवं कुष्ठ आदि रोगों से ग्रस्त दीन हीन मनुष्यों की सेवा, तथा उन्हें भोजन कराना । २. गौ, तथा कुत्ते आदि पशुओं को अन्न देना । ३. पक्षियों एवं चींटियों आदि को अन्न देना ।

(५) अतिथि यज्ञ– घर पर अकस्मात् आये हुये सदाचारी परिव्राजक एवं अन्य विद्वानों का भोजन, वस्त्र आदि से सेवा सत्कार।

वास्तव में जो लोग यज्ञ द्वारा अपने शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा को पवित्र नहीं करते, वे स्वयं ही अपने शत्रु हैं और उन्हें इस लोक में भी वास्तविक सुख प्राप्त नहीं हो सकता, परलोक में सुख का तो प्रश्न ही नहीं उठता। गीता में कहा गया है–

उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्।
आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥

गीता. ६।५

(आत्मना आत्मानं उद्धरेत्) पुरुष स्वयं अपना उद्धार करे, (आत्मानम् न अवसादयेत्) अपने आत्मा का पतन न करे, (हि) निश्चय ही (आत्मा एव आत्मनः बन्धुः) जीवात्मा स्वयं ही अपना बन्धु है (आत्मा एव आत्मनः रिपुः) और आत्मा स्वयं ही अपना शत्रु है।

यज्ञ से सुख एवं समृद्धि प्राप्त होने का उल्लेख निम्नाङ्कित मन्त्रों में स्पष्ट रूप से किया गया है।

सायंसायं गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः प्रातः सौमनसस्य दाता।

वसोर्वसोर्वसुदान एधि वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम॥

अथर्व. १९।५५।३

(गृहपतिः अग्निः सायं सायं प्रातः प्रातः) गृह का रक्षक अग्नि प्रत्येक सायं काल तथा प्रत्येक प्रातः काल (सौमनस्य दाता)

हमें सौमनस्य अर्थात् (सु + मन) सुख एवं शान्ति पूर्ण मन का देने वाला है। तात्पर्य यह है कि प्रतिदिन प्रातः काल एवं सायंकाल के समय अग्निहोत्र करने से हमारा मन स्वस्थ,प्रसन्न, पवित्र एवं शिव-संकल्प वाला बनता है। हे अग्ने ! आप हमें (वसोः वसोः) समस्त प्रकार के धन प्रचुर मात्रा में (वसुदानः एधि) देने वाले होइये। (त्वा इन्धानाः) तुम्हें आहुतियों से प्रदीप्त करते हुये (वयं तन्वं पुषेम) हम अपने शरीर को पुष्ट करें।

मन्त्र से स्पष्ट है कि अग्निहोत्र से हमें न केवल सुख एवं मानसिक शान्ति प्रत्युत प्रभूत धन तथा गृह एवं पर्यावरण की शुद्धता के कारण मानसिक एवं शारीरिक नीरोगता तथा पूर्ण स्वास्थ्य भी प्राप्त होता है। वास्तव में अग्निहोत्र द्वारा ही अग्नि, गृह को शुद्ध करके सच्चे अर्थ में गृहपति अथवा गृह का रक्षक बनता है।

प्रातः प्रातर्गृहपतिर्नो अग्निः सायंसायं सौमनसस्य दाता।

वसोर्वसोर्वसुदान एधीन्धानास्त्वा शतंहिमा ऋधेम॥

अथर्व. १९। ५५। ४

(गृहपतिः अग्निः) गृह का रक्षक अग्नि (प्रातः प्रातः सायं-सायं) प्रत्येक प्रातः काल तथा प्रत्येक सायंकाल (नः सौमनसस्य दाता) हमें मन की पवित्रता, सरलता एवं उदारता देने वाला है। हे अग्ने ! आप हमें (वसोः वसोः) समस्त प्रकार के धन प्रचुर मात्रा में (वसुदानः एधि) देने वाले होइये (त्वा इन्धानाः) तुम्हें समिधाओं एवं आहुतियों से प्रदीप्त करते हुये हम (शतं हिमाः ऋधेम) सौ हेमन्त ऋतुओं अर्थात् सौ वर्षों तक समृद्धि को प्राप्त होते रहें।

गृहपति—यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि जिस प्रकार बाह्य जगत में अग्नि ऊर्जा तथा प्रकाश आदि देकर हमारे गृहों की रक्षा करता है, उसी प्रकार हमारे शरीर रूपी गृह का रक्षक भी अग्नि है क्योंकि बिना अग्नि के, बिना उष्णता के तथा बिना प्राणाग्नि के शरीर एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। इसीलिये मृत्यु होने पर कहते हैं कि शरीर ठंडा हो गया।

स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे।

सो अग्ने धत्ते सुवीर्यं स पुष्यति॥

ऋग्. ३। १०। ३

(अग्ने) हे अग्ने! (यः ते जातवेदसे समिधा ददाशति) समस्त उत्पन्न पदार्थों को जानने वाले आप के लिये जो समिधायें समर्पित करता है, (स घ सुवीर्यं धत्ते) वह निश्चय ही उत्तम पराक्रम तथा सामर्थ्यवान् पुत्र को प्राप्त करता है (स पुष्यति) और वह पुष्ट तथा समृद्ध होता है।

यज्ञ से तेज, बल, नीरोगिता, यश तथा विजय प्राप्त करने का कैसा सुन्दर वर्णन निम्नाङ्कित मन्त्र में है।

ममाग्ने वर्चो विहवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम।

मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम॥

ऋग्. १०। १२८। १ अथर्व. ५। ३। १

(अग्ने) हे अग्ने ! (विहवेषु मम वर्चः अस्तु) विविध युद्धों में, जीवन के विविध संघर्षों में मेरा तेज प्रकाशित हो, मेरा वर्चस्व हो, (वयं त्वा इन्धानाः तन्वम् पुषेम) हम यज्ञ में आपको प्रदीप्त करते हुये अपने शरीर को पुष्ट बनायें। (चतस्रः प्रदिशः मह्यम् नमन्ताम्) चारों दिशायें मेरे लिये नमन करें, चारों दिशाओं में मेरा सम्मान हो, (त्वया अध्यक्षेण पृतनाः जयेम) आपकी अध्यक्षता में, आपके नेतृत्व में हम शत्रु सेनाओं पर विजय प्राप्त करें।

आयुर्यज्ञेन कल्पतां आदि मन्त्र (यजु. १८ । २९, तथा २२ । ३३) जो आगे मन्त्र भाग में दिया जायेगा, में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि यज्ञ से मेरी आयु, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, वाणी तथा आत्मा आदि बलवान्, समर्थ एवं प्रखर बनें।

यज्ञ एक वैज्ञानिक उपचार प्रक्रिया—

वस्तुतः यज्ञ अपने आप में ही एक सम्पूर्ण उपचार प्रक्रिया है। अथर्व वेद के अनेक मन्त्रों में यज्ञ से विभिन्न व्याधियों का उपचार किये जाने का उल्लेख किया गया है तथा बताया गया है कि यज्ञ से विभिन्न प्रकार के कीटाणुओं तथा रोग उत्पन्न करने वाले क्रिमियों का नाश होता है। इसके लिये रोग के अनुसार भिन्न भिन्न प्रकार की ओषधियों का प्रयोग हवि के रूप में किया जाने का विधान है। इसी प्रकार रोगों के उत्पन्न होने के समय को दृष्टि में रखते हुये विभिन्न प्रकार के यज्ञों का समय निर्धारित किया गया है ताकि रोग उत्पन्न ही न हो पायें। गोपथ ब्राह्मण उ. १ । १९ में कहा गया है—**भैषज्ययज्ञा वा एते यच्चातुर्मास्यानि। तस्माद् ऋतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते, ऋतुसन्धिषु वै व्याधिर्जायते।** ये जो चातुर्मास्य यज्ञ हैं, वे भैषज्य यज्ञ हैं। इसीलिये ये ऋतु सन्धियों में किये जाते हैं। ऋतु सन्धियों में ही व्याधियां उत्पन्न होती हैं। फाल्गुन मास की पूर्णमासी पर चातुर्मास्य यज्ञों का अनुष्ठान करे।

फाल्गुन पूर्णमासी संवत्सर का मुख है।

छान्दोग्य उपनिषद् के अनुसार इन भैषज यज्ञों में आयुर्वेद के ज्ञाता को ब्रह्मा नियुक्त किया जाता है। असाध्य रोगों का उपचार भी हवन से हो सकता है, इसका स्पष्ट वर्णन निम्नाङ्कित मन्त्रों में है।

यदि क्षितायुर्यदि वा परेतो यदि मृत्योरन्तिकं नीत एव।

तमा हरामि निर्ऋतेरुपस्थादस्पार्शमेनं शतशारदाय॥

अथर्व. ३।११।२

(यदि क्षितायुः) चाहे क्षीण आयु वाला हो, (यदि वा परेतः) चाहे परलोक को जाने वाला हो गया हो, (यदि मृत्योः अन्तिकं नीतः एव) तथा चाहे मृत्यु के समीप ही पहुँचा हुआ हो, तो भी मैं (तं) उसको (हविषा) हवन के द्वारा (निर्ऋते उपस्थात् आहरामि) मृत्यु के समीप से वापिस लाता हूँ तथा (एनं शतशारदाय अस्पार्शम) इसको सौ वर्ष की आयु के लिये समर्थ करता हूँ।

यहाँ (हविषा) इसके पहले वाले मन्त्र से लिया गया है।

सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा हविषाऽहार्षमेनम्।

इन्द्रो यथैनं शरदो नयात्यति विश्वस्य दुरितस्य पारम्॥

अथर्व. ३।११।३

(सहस्राक्षेण शतवीर्येण शतायुषा) नेत्र आदि इन्द्रियों को सहस्रों प्रकार से पुष्ट करने वाली, सैकड़ों शक्तियों से युक्त तथा सौ वर्ष की आयु देने वाली (हविषा एनम् आहार्षम्) हवि से मैं इसे मृत्यु के पाश से छुड़ाकर लाया हूँ जिससे कि (इन्द्र) यज्ञ अथवा यज्ञ की

आहुतियों से प्रसन्न इन्द्र (एनं) इसको (विश्वस्य दुरितस्य पारम्) समस्त प्रकार के रोगों तथा कष्टों के पार (शतं शरदः अति नयति) सौ वर्ष से भी अधिक आयु तक ले जायें।

उत्तम ओषधियों तथा सुगन्धित द्रव्यों एवं शुद्ध घृत से किये गये यज्ञ के धुयें से मन प्रसन्न एवं शरीर पुष्ट होता है।

चरक में कहा गया है—आत्मवान् धूमपो भवेत।

आत्मज्ञानी को यज्ञीय धूम्र का पान करने वाला होना चाहिये। यजुर्वेद में तो ओषधियों के धूम पान से अनेक रोगों के उपचार का विस्तृत विधान है।

'धूम्रपानात् प्रशाम्यन्ति बलं भवति चाधिकम्'

—चरक संहिता

ओषधियों के धूम्र के पान से अनेक रोग शान्त हो जाते हैं तथा बल में वृद्धि होती है।

उन्माद की चिकित्सा भी विशेष ओषधियों से किये गये यज्ञ द्वारा की जा सकती है (अथर्व ६। १११)। इसी प्रकार अन्य अनेक भयंकर रोगों का उपचार यज्ञ द्वारा किये जाने का उल्लेख अथर्ववेद में अनेक स्थानों पर प्रमुख रूप से आया है।

यज्ञ से कामनाओं की पूर्ति तथा स्वर्ग एवं मोक्ष की प्राप्ति

यह सर्व विदित है कि भगवान् राम का जन्म यज्ञ के फल स्वरूप हुआ था। यदि आज हम राम सरीखे ओजस्वी एवं प्रतापी पुत्रों की कामना करते हैं तो हमें भी यज्ञ करना चाहिये। ब्राह्मणों का तो यह परम कर्तव्य है और उन्हें अज्ञान एवं स्वार्थ छोड़कर इस पुनीत कार्य के लिये अपने जीवन का दान करना चाहिये।

यज्ञ से स्वर्ग एवं मोक्ष प्राप्ति का वर्णन अथर्ववेद काण्ड १८ सूक्त ४ के अनेक मन्त्रों में स्पष्ट रूप से आया है।

(ईजानम् सुकृतां लोके धत्त) —अथर्व १८। ४। १।

हे अग्नि ! यज्ञ करने वालों को श्रेष्ठ कर्म करने वालों के लोक में धारण करो, ले जाओ।

ईजानाः स्वर्गं लोकम् यन्ति । —अथर्व. १८ । ४ । २

यज्ञ करने वाले स्वर्ग लोक को प्राप्त करते हैं ।

स्वर्गाः लोका यजमानाय दुह्राम । अथर्व. १८ । ४ । ५

स्वर्ग लोक यज्ञकर्ता की प्रत्येक कामना को पूर्ण करें ।

नौर्ह वा एषा स्वर्ग्या यदग्निहोत्रम् ।

शतपथ. २ । ३ । ३ । १५

यह जो अग्निहोत्र है, वह स्वर्ग को ले जाने वाली नौका है। इसीलिये निर्देश दिया गया है स्वर्ग कामी यजेत् । स्वर्ग की कामना करने वाला यज्ञ करे ।

अग्निहोत्रं जुहुयात स्वर्गकामः ।

मै. उ. ६ । ३६

स्वर्ग की कामना वाला अग्निहोत्र करे ।

किन्तु इसके लिये श्रद्धा की अत्यन्त आवश्यकता है । श्रद्धा विहीन यज्ञ को तो तामसी कहा जाता है ।

विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ।

गीता १७ । १३

शास्त्रोक्त विधि से हीन, अन्नदान से रहित, बिना दक्षिणा के तथा बिना वेद मन्त्रों के किये गये श्रद्धा रहित यज्ञ को तामसी कहते हैं ।

अग्निहोत्रं सायं प्रातः गृहाणाम् निष्कृतिः स्विष्टं सुहुतं
यज्ञक्रतूनां परायणं स्वर्गस्य लोकस्य ज्योतिः ।

तैत्ति. आरण्यक १० । ६३ । १

सायं प्रातः किया गया अग्निहोत्र घरों को शुद्ध करने वाला है । श्रद्धा पूर्वक सम्पन्न किया गया यज्ञ, यज्ञ करने वालों को श्रेष्ठ फल देने

वाला तथा स्वर्ग की ज्योति है।

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु
यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन् ।
तं नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो
यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः ।।

मुण्डक० १ । २ । ५

(यः यथाकालं) जो पुरुष उचित समय पर (एतेषु भ्राजमानेषु) इन देदीप्यमान अग्निशिखाओं में (चरते) आहुतियां समर्पित करता है, आहुति देता है, उसे (आददायन्) ले जाकर (हि एताः आहुतयः) निश्चय ही ये आहुतियां (सूर्यस्य रश्मयः नयन्ति) सूर्य की किरणों के द्वारा वहां पहुंचा देती हैं;(यत्र देवानाम् एकः पतिः) जहां देवों का एक मात्र स्वामी अर्थात् परमात्मा (अधिवासः) निवास करता है।

इससे स्पष्ट है कि नित्य प्रति अग्निहोत्र तथा नियमानुसार यज्ञ करने वाला श्रेष्ठ ज्ञानी पुरुष मोक्ष का अधिकारी होता है।

यज्ञ के फल का अत्यन्त सुन्दर एवं अलंकारिक वर्णन करते हुये मुण्डकोपनिषद् १ । २ । ६ में कहा गया है।

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः
सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति ।
प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य
एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः ।।

(एहि एहि) आइये, आइये, (एष वः पुण्यः सुकृतः ब्रह्मलोकः) यह आपके पवित्र शुभ कर्मों के फलस्वरूप आपको प्राप्त ब्रह्मलोक

है, (इति प्रियां वाचं अभिवदन्त्यः) ऐसी प्रिय वाणी बोलती हुयी तथा (अर्चयन्त्यः) सत्कार करती हुयी (सुवर्चसः) देदीप्यमान (आहुतयः) आहुतियाँ (तम् यजमानम्) उस यजमान को,यज्ञ करने वाले को (सूर्यस्य रश्मिभिः वहन्ति) सूर्य किरणों द्वारा ब्रह्मलोक को ले जाती हैं।

यज्ञ से संबधित महत्वपूर्ण शब्द

होता—यज्ञ में मन्त्रों का उच्चारण करने वाले ऋत्विक् के विषय में कहा गया है कि वह देवों को यज्ञ में बुलाने वाला होने के कारण वास्तव में ह्वाता है। यह ह्वाता ही होता कहा जाता है।

यद्वाव स तत्र यथाभाजनं देवता अमुमावहामुमावहेत्यावाहयति तदेव होतुर्होतृत्वं होता भवति। होतेत्येनमाचक्षते य एवं वेद।

ऐत० ब्रा० १।२।२

अनुवाक्या एवं याज्या मन्त्रों का उच्चारण करने वाला सभी देवताओं को यथा भाजन, यथा स्थान यह कहकर बुलाता है कि अमुक देवता को बुलाओ, अमुक देवता को (आवह) बुलाओ, (तदेव होतुः होतृत्वं होता भवति) यही होता का होतृत्व है। इसी आह्वान के कार्य के कारण वह होता बन जाता है।

इस प्रकार जानने वाले विद्वान् उस आह्वाता को 'होता' इस नाम से पुकारते हैं।

निरुक्त (७।१५) में होता का निर्वचन निम्न प्रकार किया गया है—

होतारम् ह्वातारम् जुहोतेर्होतेत्यौर्णवाभः।

यास्काचार्य जी के अनुसार होतारम् का अर्थ है ह्वातारम् अर्थात् देवों को बुलाने वाला किन्तु निरुक्तकार और्णवाभ के अनुसार

होता शब्द "हु दानादानयोः" धातु से बनता है। अतः होता का अर्थ हुआ दान तथा आदान करने वाला अर्थात् देने और लेने वाला। भगवान् हमें सब कुछ देते हैं तथा हमारी प्रार्थनाओं को स्वीकार करते हैं, ग्रहण करते हैं। अतः भगवान होता हैं। यज्ञ में भौतिक अग्नि देवताओं को बुलाता है तथा हमारी आहुतियों को ग्रहण करता है। इस प्रकार यज्ञ में अग्नि ही प्रमुख होता है। जीवन में भी अग्नि हमें अपनी ऊर्जा के विभिन्न रूपों द्वारा न केवल जीवनी शक्ति प्रत्युत अनेक प्रकार के सुख तथा धन एवं ऐश्वर्य प्रदान करता है।

वास्तव में हमारी आज की समस्त भौतिक प्रगति अग्नि की ऊर्जा पर ही आधारित है। विद्युत भी अग्नि का ही दूसरा रूप है। इसी प्रकार आदित्य जहाँ एक ओर हमें, प्राण, प्रकाश तथा ऊर्जा प्रदान करता है वहीं दूसरी ओर जलों तथा रसों का पृथ्वी से आदान करता है, लेता है।

होता का दूसरा निर्वचन है—

जुहोतीति होता। जो अग्नि को आहुतियाँ प्रदान करता है, यज्ञ का कर्ता है, वह होता है।

इसीलिये सायणाचार्य ने होता का अर्थ **होमस्य कर्ता** तथा होम निष्पादकः लिखा है।

यजुर्वेद अध्याय २१ के मन्त्र सं. २९ से ४० तक का प्रत्येक मन्त्र 'होता यक्षत्' से प्रारम्भ होकर 'आज्यस्य होतर्यज' कहकर, होता को पिघले हुये घृत से आहुति देने के निर्देश के साथ समाप्त हुआ है।

आहुति

आहुति शब्द का अर्थ अलंकारिक रूप से बताते हुये ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है कि ये आहुतियाँ देवों को बुलाती हैं, उनका

आह्वान करती है। अतः उन्हें आहूति अर्थात् बुलाने वाला कहा जाता है। यह आहूति ही आहुति कही जाती है।

आहूतयो वै नामैता यदाहुतय एताभिर्वै देवान् यजमानो ह्वयति तदाहुतीनामाहूतित्वम्

ऐतरेय. ब्रा. १ । २

'आहुति' वास्तव में 'आहूति' है क्योंकि इसके द्वारा यजमान देवों का आह्वान करता है, बुलाता है। यही आहुतियों का आहूतित्व है। इस प्रकार अग्नि में आहुति देना, मानों देवों को बुलाना है।

स्वाहा

निघण्टु १ । ११ के अनुसार वाणी का एक नाम स्वाहा भी है। इस प्रकार स्वाहा का अर्थ है वाणी। निरुक्त ८ । २० के अनुसार स्वाहा का निर्वचन निम्न प्रकार है—

स्वाहेत्येतत्, सु आहेति वा, स्वा वाग् आहेति वा, स्वं प्राहेति वा, स्वाहुतं हविर्जुहोतीति वा।

१. सु आह इति। प्रिय, मधुर तथा कल्याणकारी वचन। सु+आह +घञ् प्रत्यय=स्वाह। 'सुपां सुलुक्' सूत्र से सभी विभक्तियों को 'आ' आदेश होकर स्वाहा शब्द बनता है। अतः इसमें सभी विभक्तियों के अर्थ आजायेंगे। उदाहरणार्थ—सु आह वक्ति अनेन इति स्वाहा। इससे प्रिय, मधुर तथा कल्याणकारी वचन बोलता है, अतः इसे स्वाहा कहा जाता है।

२. स्वा वाग् आह वक्ति अस्मिन इति स्वाहा। इससे (स्वा वाक्) अपने आत्मा की वाणी, अर्थात् अपने आत्मा के अनुसार सत्य तथा उचित वचन बोलता है, अतः इसे स्वाहा कहा जाता है। स्वा+आह्+घञ्+सु=स्वाहा।

३. स्वं प्राहेति। स्वं पदार्थं प्राह वक्ति अनेन। स्व+आह्+घञ्+सु=स्वाहा। केवल अपनी वस्तु को ही अपना कहना किसी अन्य की वस्तु को नहीं।

४. स्वाहुतं हविः जुहोति इति। सु+आ+हु+ड+सु=स्वाहा। सु आहुतं हविः जुहोति अनेन कर्मणा। अच्छी प्रकार एकत्र तथा स्वच्छ की गयी, तैयार की गयी हवि की आहुति (अनेन कर्मणा) इस कर्म से अर्थात् स्वाहा शब्द का उच्चारण करके दी जाती है।

इस प्रकार सामान्य रूप से स्वाहा शब्द का अर्थ है, प्रिय मधुर एवं कल्याणकारी वचन जब कि यज्ञ क्रिया में स्वाहा का अर्थ है, वह शब्द जिसका मन्त्र के अन्त में उच्चारण करके भली प्रकार एकत्र की गयी स्वच्छ एवं पवित्र हवि की आहुति दी जाती है। स्वाहा शब्द के अर्थ से ही यह स्पष्ट होता है कि हव्य पदार्थ (सु+आहुत) भली प्रकार एकत्र किया हुआ होना चाहिये चोरी बेईमानी से नहीं, तथा साथ ही साथ यह स्वच्छ तथा पवित्र भी होना चाहिये, किसी प्रकार से भी दूषित नहीं।

स्वाहा

उवट तथा महीधर ने अपने यजुर्वेद भाष्यों में 'स्वाहा' का अर्थ 'सुहुतमस्तु', यह भली प्रकार आहुत हो, लिखा है।

श्री सातवलेकर जी ने स्वाहा का आधुनिक अर्थ करते हुये लिखा है, स्वा=अपना, हा=त्याग अर्थात् आत्म-सर्वस्व-समर्पण।

उन्होंने लिखा है कि ब्राह्मण पद्धति में स्वाहा अर्थात् आत्म-समर्पण मुख्य बात है तथा स्वाहाविधि यज्ञ का मुख्य अंग है।

यद्यपि इस अर्थ का कोई शास्त्रीय आधार नहीं है, फिर भी इससे इतना तो स्पष्ट होता ही है कि परोपकार एवं अपने संकुचित स्वार्थों का त्याग यज्ञ की प्रमुख भावना है।

यज्ञ में 'स्वाहा' शब्द का उच्चारण करके हवि दी जानी चाहियें, यह निम्नाङ्कित मन्त्र से स्पष्ट है—

सद्यो जातो व्यमिमीत यज्ञमग्निर्देवानामभवत् पुरोगाः ।

अस्य होतुः प्रदिश्यृतस्य वाचि स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः ॥

ऋग्. १० । ११० । ११

(सद्यः जातः अग्निः) उसी समय उत्पन्न हुआ अर्थात् प्रदीप्त किया गया अग्नि (यज्ञं व्यमिमीत) यज्ञ का विशेष रूप से निर्माण करता है, उसे उत्पन्न करता है। (देवानां पुरोगाः अभवत्) यह अग्नि समस्त देवों में अग्रणी है। (ऋतस्य प्रदिशि) यज्ञ वेदी में पूर्व दिशा में स्थित (अस्य होतुः) इस होता अर्थात् आहवनीय अग्नि के (वाचि आस्ये) मुख में अर्थात् इसकी ज्वालाओं में (स्वाहाकृतम् हविः) स्वाहाकार पूर्वक अर्थात् स्वाहा शब्द का उच्चारण करते हुये प्रक्षिप्त की गयी हवि का (अदन्तु भक्षयन्तु देवाः) सभी देव भक्षण करें।

स्वाहाकार के साथ यज्ञ किये जाने के कारण शतपथ ब्राह्मण ३ । १ । ३ । २७ में कहा गया है। **'यज्ञो वै स्वाहाकारो'** स्वाहाकार यज्ञ है।

यज्ञ का यह नियम है कि—**स्वाहाकारेण वा वषट्कारेण वा देवेभ्योऽन्नम् प्रदीयते।** स्वाहा अथवा वषट् का उच्चारण करके देवों को अन्न दिया जाता है।

गोपथ ब्राह्मण (पूर्व भाग ३ । १६) में उल्लिखित, स्वाहा के विषय में निम्नाङ्कित प्रश्नोत्तर अत्यन्त ज्ञानवर्धक हैं।

प्रश्न	उत्तर
१. (स्वाहा वै कुतः सम्भूता) स्वाहा, यह वाणी किससे उत्पन्न हुयी ?	१. (स्वाहा वै सत्य सम्भूता) निःसन्देह स्वाहा सत्य से उत्पन्न है।
२. (केन प्रकृता) इसे किसने बनाया ?	२. (ब्रह्मणा प्रकृता) इसे ब्रह्म ने बनाया है।
३. (किं वै अस्याः गोत्रम्) इसका गोत्र क्या है ?	३. (साम गायन सगोत्रा) यह साम गायन सगोत्रा है। (क्योंकि इसका अर्थ ही है मधुर एवं कल्याण-मयी वाणी।)
४. (कत्यक्षरा) यह कितने अक्षर वाली है ?	४. (द्वे अक्षरे) इसमें दो अक्षर हैं।
५. (कति पदाः) यह कितने पाद वाली है ?	५. (एकं पादम्) इसमें एक पाद है।
६. (कति वर्णाः) यह कितने वर्ण वाली है ?	६. (त्रयः च वर्णाः शुक्लः पद्मः सुवर्णः इति) इसके तीन वर्ण हैं– (शुक्ल) श्वेत, (पद्मः) कमल के समान तथा (सुवर्ण) स्वर्णिम।
७. (किं पूर्वावसाना) कौन आदि अन्त वाली है ?	७. (वेदेषु सर्वच्छन्दसां समा-सभूता वर्णान्ते एकोच्छ्-वासा) वेदों में सब छन्दों के

प्रश्न	उत्तर
	समासभूत और वर्णों के अन्त में एक श्वास वाली है। तात्पर्य यह है कि इसका उच्चारण सभी मन्त्रों के प्रारम्भ में होता है, और उनके अन्त में इसका उच्चारण एक श्वास में किया जाता है।
८. (क्वचित् स्थिता) कहाँ ठहरी हुई है ?	८. (चत्वारः वेदाः षट् अङ्गानि शरीरे ओषधि-वनस्पतयः लोमानि चक्षुषी सूर्यचन्द्रमसौ) चारों वेद तथा ६ वेदाङ्ग (शिक्षा, कल्प,व्याकरण, छन्द, निरुक्त तथा ज्योतिष) इसके शरीर हैं; ओषधि तथा वनस्पति इसके लोम हैं तथा सूर्य एवं चन्द्रमा इसके दो नेत्र हैं।
९. (किमधिष्ठाना) इसका अधिष्ठान कौन है।	९. (सा स्वाहा सा स्वधा सा एषा यज्ञेषु वषट्कार-भूता प्रयुज्यते) वही स्वाहा, वही स्वधा तथा वही वषट्कार रूप में

प्रश्न	उत्तर
	यज्ञों में प्रयुक्त की जाती है। तात्पर्य यह है कि यज्ञ ही इसका अधिष्ठान है एवं स्वाहा स्वधा तथा वषट्कार इसके तीन रूप हैं।
१०,११ ब्रूहि स्वाहायाः यत् दैवतम्, रूपं च। स्वाहा का जो देवता तथा उसका जो स्वरूप है, उसे बताइये।	१०,११ तस्याः अग्निः दैवतम् ब्राह्मण रूपम्) उसका देवता अग्नि तथा स्वरूप ब्राह्मण है।

पुरोऽनुवाक्या—आहुति देने से पूर्व जिन ऋचाओं का पाठ देवताओं के आवाहन के लिये होता है, उन्हें पुरोऽनुवाक्या कहते हैं।

याज्या—जिन मन्त्रों से आहुतियाँ दी जाती हैं, उन्हें याज्या कहते हैं।

शस्या—जिन ऋचाओं का पाठ प्रशंसा के लिये होता हैं, वे शस्या कही जाती हैं।

आधार आहुति—अग्नि पर घृत की धारा की आहुति।

हवि पञ्चक—यज्ञ में प्रयोग किये जाने वाले पाँच पदार्थ—

(१) धान (२) करम्भ (३) परिवाप (४) पुरोडाश (५) पयस्या (मट्ठा)

हवि

हूयते इति हविः। जिन द्रव्यों से आहुति दी जाती है, उन्हें

हवि कहते हैं। हवि पूर्ण रूप से शुद्ध तथा क्षार, लवण, मिर्च, अम्ल कषाय आदि दोषों से रहित होना चाहिये।

हव्य पदार्थ

अपपूवान् क्षीरवांश्चरुरेह सीदतु —अथर्ववेद १८। ४। १६
गेहूँ के आटे तथा घी से बनाये हुये पूड़ी आदि पदार्थ और दुग्ध के साथ पकाये गये चावल यहाँ यज्ञ में स्थित हों।

अपपूवान् दधिवांश्चरुरेह सीदतु —अथर्व १८। ४। १७
मालपुये तथा पूड़ी आदि और दही मिश्रित पके हुये चावल यहाँ यज्ञ में स्थित हों। इसी प्रकार इस सूक्त में अपूपवान् के साथ द्रप्सवान् अर्थात् दही की लस्सी, घृतवान् अर्थात् घी मिश्रित, मधुमान् अर्थात् शहद अथवा मीठे पदार्थों से युक्त तथा रसवान् अर्थात् मीठे रसों से युक्त चरुः, पकाये हुये चावलों आदि का विधान है।

सामान्य रूप से प्राचीन श्रौत यज्ञों में हवि के लिये निम्नाङ्कित पदार्थों का विशेष उल्लेख है।

(१) गोघृत (२) दुग्ध (३) दही, (४) चरु (पकाये हुये तथा बिना मांड़ निकाले हुये घृत मिश्रित चावल) (५) व्रीहि (धान) (६) यव (जौ) (७) माष (उड़द) (८) तिल (९) उत्तू (१०) शश्कुली (पूड़ी) विशेष रूप से मीठी पूड़ी (मालपुआ) आदि (११) करम्भ (दही के सत्तू) (१२) धाना (भुने हुये जौ) (१३) पुरोडाश (यह जौ अथवा पिसे हुये चावलों को पानी में गूंथकर मिट्टी के छोटे पतले पात्रों, जिन्हें कपाल कहते हैं, में अंगारों के बीच में रखकर पकाया जाता है)। (१४) मधु (१५) पयस्या (मट्ठा) (१६) यवागू।

इनके अतिरिक्त बेर, लाजा (खीलें), गोधूम (गेहूँ) इन्द्र जौ, विभिन्न ओषधियों तथा ओषधियों के रसों का उल्लेख भी अनेक स्थानों पर आया है।

यवागू—सोलह गुने पानी में पकाये गये चावल, जो घुटकर जल के साथ एकाकार हो गये हों, यवागू कहलाते है (मीमांसा कोश)। इसका जौ से कोई सम्बन्ध नहीं है।

चरु—बिना मांड़ निकाले हुये, पके हुये (तण्डुल) चावलों में घृत डालकर चरु तैयार किया जाता है। इसमें घृत स्त्री का अंश तथा चावल पुरुष का अंश माना जाता है। इस प्रकार यह चरु द्रव्य, मिथुन सदृश होता है। जो इस रहस्य को जानता है वह प्रजा और पशुओं से युक्त हो जाता है। एतरेय ब्राह्मण (१ । १)

स्वामी दयानन्द जी ने खीर, मोहन भोग तथा लड्डू आदि मधुर पाक द्रव्यों का भी उल्लेख किया है, जो वर्तमान काल में उचित प्रतीत होते हैं क्योंकि ये अथर्ववेद १८ । ४ के पूर्वोक्त मन्त्रों के अनुरूप ही हैं।

यज्ञ सामग्री—

पं० युधिष्ठिर मीमांसक ने अपनी पुस्तक "श्रौत यज्ञों का संक्षिप्त परिचय" में लिखा है कि वर्तमान समय में प्रचलित यज्ञ सामग्री का प्रयोग प्राचीन परम्परा के अनुकूल नहीं है क्योंकि उनके अनुसार यज्ञों में जिस पदार्थ की हवि दी जाती है, उसका यजमान तथा ऋत्विजो के लिये भक्षण का विधान है किन्तु स्वामी दयानन्द जी ने संस्कार विधि में सुगन्धित पदार्थों में कस्तूरी, केशर, अगर तगर, श्वेत चन्दन, इलायची, जायफल, जावित्री आदि का स्पष्ट उल्लेख किया है,जो सर्वथा उचित प्रतीत होता है। अतः इस प्रकार के सुगन्धित पदार्थों को मिलाकर बनायी गयी सामग्री के प्रयोग में कोई आपत्ति प्रतीत नहीं होती। स्वयं श्री युधिष्ठिर जी ने भी यह स्वीकार किया है कि रोग नाशक ओषधियों का प्रयोग रोगनिवृत्ति के लिये किये जाने वाले विशेष यज्ञों में किया जा सकता है।

अथर्ववेद, पुराणों, देवी भागवत तथा आयुर्वेद के ग्रन्थों में भिन्न भिन्न रोगों तथा संकटों के निवारण के लिये भिन्न भिन्न पदार्थों से आहुति देने का स्पष्ट विधान किया गया है।

शतपथ ब्राह्मण द्वारा शतरुद्रिय होम में अर्क पत्रों से आहुति देने का निर्देश दिया गया है।

रोगनाशक पदार्थ—

रोगनाशक सामग्री में प्रत्येक रोग को दृष्टि में रखते हुये भिन्न भिन्न पदार्थों का मिश्रण किया जाता है जिनमें से कुछ निम्न प्रकार हैं।

सोमलता, ब्राह्मी, पुनर्नवा, जीवन्ती, गिलोय, शतावरि, कमलगट्टा, शीतल चीनी, तालीस पत्र, रक्तचन्दन, वच, नाग केशर, दालचीनी, राम्ना, आंवला, इन्द्र जौ, वंशलोचन, असगंध, गुलाब के फूल, बड़ी इलायची, बड़ी हरण, छोटी पीपल, चिरायता, मंडूक पर्णी, इन्द्रायण की जड़, मकोय, अड़सा, सोंठ, विधारा, शालपर्णी, क्षीर काकोली, गोखरू, हल्दी, अपामार्ग, मुलहठी, ताल मखाना, शंख पुष्पी, काला-जीरा, सफेद जीरा तथा लौंग आदि।

इसके अतिरिक्त मिष्ट पदार्थ जैसे गुड़, एवं शर्करा तथा पुष्टि कारक पदार्थ जैसे मुनक्का, किशमिश, गरी, चिरौंजी, मखाना, काजू, अखरोट, पिश्ता, बादाम आदि मेवों का भी समुचित प्रयोग स्वास्थ्य के लिये लाभ दायक होगा।

सभी सुगन्धित एवं रोग नाशक पदार्थों को यथासम्भव समान मात्रा में लेकर (अधिक मूल्यवान पदार्थों की मात्रा कम रखें) उन्हें कूट लें तथा उसमें तिल, तिल का आधा चावल तथा चावल का आधा जौ, और उड़द, शर्करा अथवा गुड़ एवं घृत मिलाकर उत्तम सामग्री बना लें।

यज्ञ में मन्त्रों का विनियोग

एतद्वै यज्ञस्य समृद्धं यद्रूपसमृद्धं । यत्कर्म क्रियमाणमृग्यजुर्वा-भिवदति ।

गोपथ उत्त. २ । ६

निश्चय ही यह यज्ञ की समृद्धि है, जो रूप समृद्धि है अर्थात् जो मन्त्र में कहा जा रहा है, वही कर्म किया जाना यज्ञ की समृद्धि है ।

यज्ञ में मन्त्रों के विनियोग का यही वास्तविक सिद्धान्त है ।

श्रद्धा—उपासना की भांति यज्ञ में भी श्रद्धा का अत्यन्त महत्व है । बिना श्रद्धा के किया गया यज्ञ निकृष्ट एवं निष्फल होता है ।

आहुतियों का स्थान

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने ।
तदाज्यभागावन्तरेणाहुतीः प्रतिपादयेत् ।।

मुण्डक० १ । २ । २

(यदा हि हव्यवाहने समिद्धे) जब हव्य वाहन, अर्थात् देवताओं को हव्य पहुंचाने वाली अग्नि के प्रज्वलित होने पर उसकी (अर्चिः लेलायते) ज्वालायें लपलपाने लगें (तदा आज्यभागौ अन्तरेण) तब आज्यभाग आहुतियों के स्थान के मध्य में (आहुतीः प्रतिपादयेत्) आहुतियाँ देनी चाहिये ।

इस महत्वपूर्ण श्लोक से यह स्पष्ट हो जाता है कि केवल भली प्रकार प्रज्वलित अग्नि की ज्वालाओं में ही यज्ञ कुण्ड के मध्य में आहुति दी जानी चाहिये, धुआँ देने वाली ज्वाला रहित अग्नि में नहीं ।

यज्ञ के लिये यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण निर्देश है जिसका सदैव पालन किया जाना चाहिये ।

समिधा

हवि के साथ साथ समिधाओं का भी विशेष महत्व है। इसीलिये कुछ विशेष वृक्षों की समिधाओं के प्रयोग का ही विधान किया गया है ताकि उनसे निकलने वाला धुआँ स्वास्थ्य के लिये लाभदायक हो और रोगों का नाश कर सके। समिधाओं में पलाश का विशेष महत्व है। आम्र, अश्वत्थ(पीपल)आदि अन्य वृक्षों,जिनका विवरण आगे दिया जायेगा, के साथ साथ खैर, छोंकर (शमी वृक्ष) खेजड़ी, बेल तथा चन्दन की समिधाओं का भी विधान है।

यज्ञ पात्र

पहले सभी यज्ञ पात्र काष्ठ के बनाये जाते थे। स्वामी दयानन्द जी ने सोने चाँदी के यज्ञपात्रों का भी उल्लेख किया है किन्तु यह सामान्य व्यक्तियों के लिये सम्भव नहीं है। इससे केवल यही निष्कर्ष निकलता है कि देश,काल एवं परिस्थितियों के अनुसार ऐसी श्रेष्ठ धातुओं, जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक न हों, के स्वच्छ पात्रों का भी प्रयोग किया जा सकता है। वस्तुतः श्रौत सूत्रों में काष्ठमय पात्रों तथा घृत, दुग्ध, व्रीहि, यव आदि सामान्य हव्य द्रव्यों का विधान संभवतः इस उद्देश्य से किया गया था कि उनकी व्यवस्था साधारण आर्थिक स्थिति के पुरुषों द्वारा भी सरलता से की जा सकती थी क्योंकि यज्ञ में वेद मन्त्र तथा भक्ति एवं भावना प्रमुख हैं, मूल्यवान् हव्य पदार्थ एवं पात्र नहीं।

प्रसाद वितरण

यज्ञ के पश्चात् प्रसाद वितरण के लिये पंचामृत भी तैयार किया जा सकता है, जिसमें दुग्ध, दही, गो घृत, मधु तथा शर्करा के साथ इच्छानुसार मेवे तथा गंगा जल का प्रयोग किया जाना चाहिये।

महत्वपूर्ण संशोधन

पृष्ठ ६८ त्रुटि पूर्ण है। उसका शुद्ध रूप निम्न प्रकार है—

आधाराहुतियाँ—निम्नाङ्कित मन्त्रों से दो आघार (घृत की धारा की) आहुतियाँ दी जानी चाहिये।

ओम् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये इदं न मम॥

यजु. २२। ३२

इस मन्त्र को मन में बोलकर, इससे आहवनीय अग्नि के उत्तर भाग में घृत की सीधी, न टूटने वाली धारा से, पश्चिम से लेकर पूर्व तक।

ओम् इन्द्राय स्वाहा। इदं इन्द्राय--इदं न मम॥

यजु. २२। २७

इससे यज्ञ कुण्ड के दक्षिणी भाग में घृत की सीधी धारा से पश्चिम से पूर्व तक, आहुति दी जानी चाहिये।

इस विषय में निर्देश है—

ऋजुमाधारयति दीर्घमाघारयति सन्ततमाघारयति। आघार-आहुतियाँ सीधी, स्थूल एवं न टूटने वाली धारा में पश्चिम से पूर्व की ओर दी जानी चाहिये। इन्हें पूर्वाघार तथा उत्तराधार आहुतियाँ कहते हैं।

आज्यभागाहुतियाँ–निम्नाङ्कित मन्त्रों से घृत की दो आहुतियाँ दी जानी चाहिये।

ओम् अग्नये स्वाहा। इदं अग्नये--इदं न मम॥

यजु. २२। ६, २७

इससे आहवनीय अग्नि के उत्तर पूर्वार्ध मे (ईशान कोण की ओर)

ओम् सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय--इदं न मम॥

यजु. २२। ६, २७

इससे कुण्ड के दक्षिण पूर्वार्ध में (आग्नेय कोण की ओर)।

उत्तरार्धपूर्वार्धेऽग्नये जुहोति दक्षिणार्धपूर्वार्धे सोमाय। आप. श्रौत सू. २। १८। ५–६। गोभिल गृह्य सूत्र १। ८। ५

त्यागांश

अधिकांश मन्त्रों के साथ त्यागांश छूट गया है। कृपया इसे निम्न प्रकार जोड़ कर आहुतियाँ प्रदान करें।

मन्त्र सं.	त्यागांश
९५, ९६	इदं सूर्याय–इदं न मम।
९७, ९८	इदं अग्नये–इदं न मम।
१०३	इदं ब्रह्मणे–इदं न मम।
१०९	इदं वरुणाय–इदं न मम।
११४, ११५, ११६	इदं अग्नये–इदं न मम।
११७	इदं सोमाय–इदं न मम।
११८, ११९	इदं अग्नये–इदं न मम।
१२०	इदं वैश्वानराय–इदं न मम।
१२१	इदं सवित्रे–इदं न मम।
१२२, १२३, १२४,	इदं विष्णवे–इदं न मम।
१२५, १२६	इदं विष्णवे–इदं न मम।
१२७, १२८, १२९	इदं सूर्याय–इदं न मम।
१३०	इदं इन्द्राय–इदं न मम।
१३१	इदं अग्नये–इदं न मम।
१३२	इदं वरुणादिभ्यः–इदं न मम।
१३३	इदं देवेभ्यः–इदं न मम।
१३४ रौहिण आहुतियाँ	प्रथम-इदं आदित्याय–इदं न मम।
	द्वितीय-इदं अग्नये–इदं न मम।
१३५	इदं इन्द्राय–इदं न मम।
१३६	इदं यज्ञाय–इदं न मम।
१३७	इदं अग्नये बृहस्पतये च-इदं न मम।

मन्त्र सं.	त्यागांश
१३८	इदमग्न्यादिभ्यः देवेभ्यः–इदं न मम ।
१३९	इदमग्न्यादिभ्यः देवेभ्यः–इदं न मम ।
१४०	इदं प्राणादिभ्यः–इदं न मम ।
१४१	इदमायुरादिभ्यः देवेभ्यः–इदं न मम ।
१४२	इदमग्नये–इदं न मम ।
१४३, १४४	इदं ब्रह्मणे–इदं न मम ।
१४५	इदं अग्नये–इदं न मम ।
१४६	इदं वायवे–इदं न मम ।
१४७	इदं सूर्याय–इदं न मम ।
१४८	इदं चन्द्राय–इदं न मम ।
१४९	इदं सोमाय–इदं न मम ।
१५०	इदं इन्द्राय–इदं न मम ।
१५१	इदं अद्भ्यः–इदं न मम ।
१५२	इदं ब्रह्मणे–इदं न मम ।
१५३	इदं सवित्रे–इदं न मम ।
१५४	इदं विश्वेदेवेभ्यः–इदं न मम ।
१५५	इदं सोमादिभ्यः देवेभ्यः–इदं न मम ।
१५६	इदमर्यमादिभ्यः देवेभ्यः–इदं न मम ।
१५७	इदं अग्नये–इदं न मम ।
१५८	इदमर्यमादिभ्यः–इदं न मम ।
१५९	इदं वाचस्पतये–इदं न मम ।
१६०	इदं प्रजापतये–इदं न मम ।
१६१	इदं प्रजापतये–इदं न मम ।
१६२	इदं प्राणापानाभ्याम्–इदं न मम ।
१६३	इदं द्यावापृथिवीभ्याम्–इदं न मम ।

मन्त्र सं.	त्यागांश
१६४	इदं सूर्याय–इदं न मम।
१६५	इदमग्नये–इदं न मम।
१६६	इदं विश्वम्भराय–इदं न मम।
१६७	इदमीश्वराय–इदं न मम।
१६८	इदमीश्वराय–इदं न मम।
१६९	इदमीश्वराय–इदं न मम।
१७०	इदमीश्वराय–इदं न मम।
१७१	इदमीश्वराय–इदं न मम।
१७२	इदमीश्वराय–इदं न मम।
१७३	इदमीश्वराय–इदं न मम।
१७४	इदमिन्द्राय–इदं न मम।
१७५	इदं कामाय–इदं न मम।
१७६, १७७	इदं रुद्राय–इदं न मम।
१७८, १७९	,, ,,
१८०, १८१	,, ,,
१८२, १८३	,, ,,
१८४, १८५	,, ,,
१८६, १८७	,, ,,
१८८, १८९	,, ,,
१९०, १९१	,, ,,
१९२	इदमग्नये–इदं न मम।
१९३	इदमग्नये–इदं न मम।
१९४	इदमग्नये–इदं न मम।
१९५	इदमग्नये–इदं न मम।
१९६	इदमग्नये–इदं न मम।

मन्त्र सं.	त्यागांश
१६७	इदमग्नये–इदं न मम ।
१६८	इदमग्नये–इदं न मम ।
१६९	इदमग्न्यादिभ्यः देवेभ्यः–इदं न मम ।
२००	इदं विश्वकर्मणे–इदं न मम ।
२०१	इदं अग्नये–इदं न मम ।
२०२	इदं इन्द्राय–इदं न मम ।
२०३	इदमग्नये–इदं न मम ।
२०४, २०५	इदं सवित्रे–इदं न मम ।
२०६, २०७	,, ,,
२०८	,, ,,
२०९	इदं रुद्राय–इदं न मम ।

संशोधन पत्रम्

१२९	स्वर्ण के पश्चात् 'शुक्रः स्वाहा', बढ़ा लें ।
१५८	प्र पूषा ।
१५९	अन्त में 'स्वाहा' बढ़ा लें ।
२०२	इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद् वशी । रायस्पोषेण सं सृज जीवातवे जरसे नय (स्वाहा) ।
२०३	यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम् । तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः (स्वाहा) ।

अग्निहोत्र—ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार अग्निहोत्र सूर्योदय के पश्चात् ही किया जाना चाहिये, सूर्योदय के पूर्व नहीं ।

यज्ञ प्रक्रिया

यज्ञ शाला—यज्ञ शाला का निर्माण स्वच्छ, समतल, शान्त, विस्तृत एवं वायु युक्त स्थान में किया जाना चाहिये। यज्ञशाला को भली प्रकार अलङ्कृत किया जाना चाहिये तथा वेदी को कुंकुम, हल्दी तथा आटा आदि से सुभूषित किया जाना चाहिये।

यज्ञ कुण्ड—यह सामान्य रूप से सवा हाथ लम्बा, सवा हाथ चौड़ा तथा भूमि तल से ९ अंगुल ऊँचा होना चाहिये। यज्ञ कुण्ड के तल की लम्बाई तथा चौड़ाई ऊपर की नाप की आधी होनी चाहिये। यज्ञ कुण्ड के चारों ओर तीन तीन अंगुल ऊँची तथा तीन तीन अंगुल चौड़ी तीन मेखलायें बनायी जानी चाहिये। मेखलाओं का आकार कुण्ड के आकार के अनुसार तथा सौन्दर्य की दृष्टि से परिवर्तित किया जा सकता है।

समिधा—काष्ठ के जिन टुकड़ों में यज्ञाग्नि प्रज्वलित की जाती है, उन्हें समिधा कहते हैं। यज्ञ में निम्नाङ्कित वृक्षों की समिधाओं के प्रयोग किये जाने का विधान है—चन्दन, आम्र, पलाश पीपल, गूलर, बेल, देवदार, सुरू, साल, शमी, वट, अपामार्ग, खैर तथा अमलताश।

तृणों में कुश तथा दर्भ मुख्य यज्ञीय तृण हैं।
सभी समिधायें एवं तृण स्वच्छ एवं दीमक, चींटी तथा अन्य कीटादि से रहित होनी चाहिये। समिधाओं की मोटाई अंगूठे से अधिक होना उपयुक्त नहीं है।

होम द्रव्य—यज्ञ में घृत के साथ साथ निम्नाङ्कित हव्य पदार्थों की आहुतियां देने का विधान है।

१. सुगन्धित पदार्थ—कपूर, गूगुल, राल, देवदार, अगर, तगर, खस, जटामांसी, छैलछुरी, नारियल, गोरोचन, केशर, कस्तूरी, सुगन्धवाला, श्वेतचन्दन, इलायची जायफल, जावित्री, नागर मोथा तथा कपूरकचरी।

२. पुष्टिकारक पदार्थ—घृत, दुग्ध, फल, कन्द, अन्न, व्रीहि (भूसी न निकाले हुये धान) जौ, चावल, गेहूं, उड़द, तिल, सत्तू आदि। घृत में गोघृत का विशेष महत्व है। जौ तथा धान को पछोर कर स्वच्छ जल से धोकर सुखा लेना चाहिये।

यज्ञ में लवण, मिर्च तथा मांस, मदिरा आदि निकृष्ट पदार्थों का सर्वथा निषेध है।

सभी होम द्रव्य शुद्ध होना चाहिये और उनमें किसी प्रकार की गन्दगी नहीं होनी चाहिये, घृत को भी गरम करके छान लेना चाहिये।

३. मिष्ट पदार्थ—चरु (बिना मांड़ निकाले हुये पके चावल) शर्करा, मधु, गरी, मखाना किशमिश, छुहारा, खजूर, मीठा चावल, खीर, मोदक, मोहनभोग आदि। हवन के लिये खीर, भात, मोदक तथा मोहन भोग आदि पवित्रता से बनाये जाने चाहिये।

४. रोगनाशक पदार्थ—सोमलता, गिलोय, आदि रोग निवारक औषधियाँ जिनका विवरण अथर्ववेद, आयुर्वेद तथा कुछ अन्य ग्रन्थों में दिया गया है।

पुरोहित—केवल सदाचारी, लोभ रहित, त्यागी, वेदवित् विद्वान का ही पुरोहित के रूप में वरण किया जाना चाहिये। यदि यज्ञ सम्पन्न करवाने वाले विद्वानों की संख्या दो हो तो एक को ऋत्विक् तथा दूसरे को पुरोहित कहा जाता है। यदि यह संख्या तीन हो, तो उन्हें ऋत्विक्, पुरोहित तथा अध्यक्ष कहा जाता है। बड़े यज्ञों में वेदज्ञ विद्वानों की यह संख्या चार होती है और उन्हें होता, अध्वर्यु, उद्गाता तथा ब्रह्मा कहा जाता है।

आहुति देने वाले यजमान को पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख होकर बैठना चाहिये।

चारों ऋत्विजों का स्थान वेदी के चारों ओर निम्न प्रकार होना चाहिये।

होता—वेदी से पश्चिम, पूर्व मुख।

अध्वर्यु—वेदी से उत्तर, दक्षिण मुख।

उद्गाता—वेदी से पूर्व पश्चिम मुख।

ब्रह्मा—वेदी से दक्षिण, उत्तर मुख।

यज्ञ क्रम

१. ईश्वर प्रार्थना एवं उपासना।
२. स्वस्ति वाचन।
३. शान्ति पाठ।
४. अग्नि, यज्ञ एवं सरस्वती की स्तुति।
५. आचमन।
६. अङ्ग स्पर्श।
७. समिधाचयन।
८. अग्नयाधान।
९. अवसर एवं उद्देश्य के अनुकूल आहुतियाँ।
१०. स्विष्टकृत् एवं प्राजापत्य आहुतियाँ।
११. पूर्णाहुति।
१२. यज्ञ की अर्चना एवं प्रदक्षिणा।
१३. नमस्कार मन्त्रों से भगवान को प्रणाम।
१४. दान, दक्षिणा तथा ऋत्विजों एवं अतिथियों आदि का समुचित सत्कार।

उपरिलिखित क्रम के अनुसार ही मन्त्रों का क्रम रखा गया है। समय का अत्यन्त अभाव होने पर भी यज्ञ प्रारम्भ करने से पूर्व ईश्वर प्रार्थना के मन्त्रों का पाठ अवश्य किया जाना चाहिये।

प्रार्थना मन्त्र

१. यो भूतं च भव्यं च सर्वं यश्चाधितिष्ठति ।

स्व१र्यस्य च केवलं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।

अथर्व. १० । ८ । १

(यः भूतं च भव्यं च) जो भूत भविष्य तथा वर्तमान (यः सर्वं अधितिष्ठति) सबका अधिष्ठाता है, (यस्य च केवलं स्वः) और जिसका केवल प्रकाशमय तथा आनन्दमय स्वरूप ही है अर्थात् जो केवल प्रकाश स्वरूप तथा सुख स्वरूप है, (तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिए नमस्कार है ।

२. यस्य भूमिः प्रमाऽन्तरिक्षमुतोदरम् ।

दिवं यश्चक्रे मूर्धानं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।

अथर्व. १० । ७ । ३२

(यस्य भूमिः प्रमा) पृथिवी जिसकी पदस्थानीय है, (अन्तरिक्ष उत उदरम्) तथा अन्तरिक्ष जिसके उदर के समान है, (यः दिवं मूर्धानं चक्रे) जिसने द्युलोक को मूर्धा अर्थात् शिर के स्थान में बनाया है, तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः) उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है ।

३. यस्य सूर्यश्चक्षुश्चन्द्रमाश्च पुनर्णवः ।

अग्निं यश्चक्र आस्यं तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।

अथर्व. १० । ७ । ३३

(सूर्यः पुनर्णवः चन्द्रमाः च) सूर्य तथा पुनः पुनः नवीन होने वाला चन्द्रमा (यस्य चक्षुः) जिसके नेत्रों के समान हैं (यः अग्निं आस्यं चक्रे) तथा जिसने अग्नि को अपने मुख के समान बनाया है, उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है।

४. यस्य वातः प्राणापानौ चक्षुरङ्गिरसोऽभवन् ।

दिशो यश्चक्रे प्रज्ञानीस्तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ।।

अथर्व. १० । ७ । ३४

(यस्य वातः प्राणापानौ) वायु जिसके प्राण और अपान के समान है (अङ्गिरसः चक्षुः अभवन्) सूर्य अथवा प्रकाश देने वाली किरणें जिसके चक्षु के समान है (यः दिशः प्रज्ञानीः चक्रे) तथा जिसने दिशाओं को अपने कानों के रूप में बनाया है, उस ज्येष्ठ ब्रह्म के लिये नमस्कार है।

५. नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च

मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।।

यजु १६ । ४१

(नमः शम्भवाय च मयोभवाय च) सांसारिक सुख उत्पन्न करने वाले सुख स्वरूप तथा मोक्ष सुख के प्रदाता परमानन्द स्वरूप परमात्मा को नमस्कार है; (नमः शंकराय च मयस्कराय च) हर्ष, उल्लास एवं लौकिक सुख के प्रदाता तथा मोक्ष के, परम आनन्द के प्रदाता परब्रह्म को नमस्कार है; (नमः शिवाय च शिवतराय च) मङ्गलमय, कल्याणकारी तथा परम कल्याणकारी देवाधि देव महादेव को नमस्कार है।

शं सुखं भावयति इति शंभवः। शं सुखं करोति इति शंकरः॥

६. ओ३म् ॥ अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म्।
होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥ १ ॥

साम. क्र. सं. ६०४ — ऋग्. १।१।१

(पुरोहितम्) यज्ञ आदि प्रत्येक श्रेष्ठ कार्य में जिन्हें आगे रखा जाता है अथवा सृष्टि से पूर्व अव्यक्त कारण प्रकृति को धारण करने वाले (यज्ञस्य देवम्) यज्ञ के द्वारा जिनका अर्चन एवं पूजन किया जाता है ऐसे, यज्ञ को उत्पन्न एवं प्रकाशित करने वाले एवं स्वय प्रकाशवान् तथा समस्त ब्रह्माण्ड को आलोकित करने वाले (ऋत्विजम्) ऋतु-ऋतु में अर्थात् सदैव पूजनीय तथा उपासना किये जाने योग्य अथवा उत्पत्ति के समय स्थूल सृष्टि को रचने वाले (होतारम्) समस्त पदार्थों एव सुखों को देने वाले तथा समस्त प्रार्थनाओं को सुनने वाले (रत्नधातमम्) समस्त प्रकार के रत्नों तथा सूर्य, चन्द्र आदि रमणीय पदार्थों को धारण करने वाले (अग्निम् ईळे) प्रकाश स्वरूप परब्रह्म की हम स्तुति प्रार्थना एवं उपासना करते हैं।

२ ३ १ २ ३ १२ ३ २ ३ १ २
७. अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये ।

१ २र ३ १ २
नि होता सत्सि बर्हिषि ।।

साम पूर्वा. १ । १; तथा उत्तरा. २ । १; ऋग् ६ । १६ । १०
क्र. सं. १ क्र. सं. ६६०

(अग्ने) हे प्रकाश स्वरूप परब्रह्म ! (गृणान.) हमारे द्वारा स्तुत किये हुये,(होता)दाता,हमें सब कुछ देने वाले, आप (वीतये) हमें प्रकाश, ज्ञान एवं समृद्धि देने के लिये तथा (हव्य दातये) अन्न आदि समस्त सुखकारी पदार्थ हमें उपलब्ध कराने के लिये(आयाहि) आइये तथा (बर्हिषि नि सत्सि) हमारे द्वारा बिछाये गये कुशों के आसन पर तथा हमारे हृदयाकाश में विराजिये ।

८. विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।

यद्भद्रं तन्न आ सुव ।।

यजु. । ३० । ३

[सवितः देव] समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले तथा उसका पालन पोषण करने वाले, उसे चेतना एव प्रेरणा देने वाले हे परब्रह्म ! [विश्वानि दुरितानि परा सुव] समस्त दुःखों, कष्टों तथा हमारे समस्त अवगुणों को हमसे दूर कर दीजिये । [यद् भद्रं तत् नः आसुव] और जो हमारे लिये कल्याणकारी हो, उसे हमारे पास लाइये हमें प्राप्त कराइये ।

हमारा कल्याण किसमें है,यह भगवान ही जानता है । इसीलिये यह प्रार्थना की गयी है । इससे सुन्दर और कोई प्रार्थना क्या हो सकती है ! यह समर्पण तथा भक्ति की चरम सीमा है ।

९. हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत् ।

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

यजु । १३ । ४, २३ । १ तथा २५ । १०
अथर्व. ४ । २ । ७ ।। ऋग्. १० । १२१ । १

(हिरण्यगर्भः अग्रे समवर्तत) सूर्य चन्द्र आदि प्रकाशमान पदार्थों को गर्भ के समान अपने अन्दर धारण करने वाला प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ही सृष्टि के पूर्व में था तथा (भूतस्य एकः जातः पतिः आसीत्) समस्त प्राणियों एवं पदार्थों का एक मात्र प्रसिद्ध स्वामी एवं रक्षक था और है। (सः इमाम् पृथिवीम् उत् द्याम् दाधार) उस ईश्वर ने इस पृथिवी तथा द्युलोक आदि को धारण किया है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुख स्वरूप परमात्मा की हम अपने अन्तःकरण से भक्ति पूर्वक उपासना करें।

१०. य आत्मदा बलदा यस्य विश्वऽउपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।

यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।

यजु. २५ । १३ ऋग्. १० । १२१ । २
अथर्व. ४ । २ । १ (पाठभेद)

जो हमें आत्मिक ज्ञान एवं आत्मिक तथा शारीरिक बल देने वाला है, समस्त विश्व जिसकी उपासना करता है, सभी देव तथा विद्वान जिसकी आज्ञा का, जिसके अनुशासन का पालन करते हैं, जिसकी छाया, जिसका आश्रय अथवा जिसकी कृपा ही अमृत है

और जिसकी अकृपा ही मृत्यु है, ऐसे सुखस्वरूप परब्रह्म की हम अपने अन्तःकरण से भक्तिपूर्वक अनन्यभाव से अर्चना एवं उपासना करें।

११. यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽ इद्राजा जगतो बभूव।

य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

ऋग. १०।१२१।३
अथर्व. ४।२।२ (पाठभेद) यजु. २३।३, २५।११

(यः) जो (प्राणतः निमिषतः जगतः) प्राणधारी तथा पलक झपकाने वाले समस्त प्राणियों का (महित्वा) अपनी महिमा से (एकः इत् राजा बभूव) एक अकेला ही स्वामी है और (यः) जो (अस्य द्विपदः चतुष्पदः ईशे) इस संसार के द्विपद तथा चतुष्पद अर्थात् समस्त प्राणियों पर शासन करता है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुखस्वरूप परमात्मा की हम अपने अन्तःकरण से भक्तिपूर्वक उपासना करें।

१२. यस्येमे हिमवन्तो महित्वा यस्य समुद्रꣳ रसया सहाहुः।

यस्येमाः प्रदिशो यस्य बाहू कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

ऋग्. १०।१२१।४, अथर्व. ४।२।५ यजु. २५।१२
[पाठभेद]

[यस्य महित्वा इमे हिमवन्तः] जिसकी महिमा से ये हिम मण्डित पर्वत स्थित हैं, [यस्य रसया सह समुद्रं आहुः] नदियों के

साथ समुद्र जिसकी महिमा का गान करते हैं, [इमाः प्रदिशाः यस्य बाहू] जिसकी बाहों की भाँति फैली हुई ये दिशायें तथा उप दिशायें [यस्य] जिसकी महिमा का गान करती हैं, [कस्मै देवाय हविषा-विधेम] ऐसे सुखस्वरूप परमात्मा की हम अपने अन्तःकरण से श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक उपासना करें।

१३. मा मा हिꣳसीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवꣳ
सत्यधर्मा व्यानट्।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥

ऋग. १०।१२१।९ यजु. १२।१०२
[पाठभेद]

[मा मा हिंसीत् जनिता यः पृथिव्या] जो पृथिवी को उत्पन्न करने वाला है, वह प्रजापति मुझे किसी प्रकार से दण्डित न करें, मुझे किसी प्रकार की वेदना, कष्ट अथवा दुःख न दे [यः वा सत्यधर्मा दिवं व्यानट्] तथा सत्य का धारण करने वाला जो परमात्मा द्युलोक का सृजन करके उसमें व्याप्त रहता है, [च यः प्रथमः आपश्चन्द्राः जजान] तथा जिस सर्वश्रेष्ठ एवं सर्व प्रथम प्रकट होने वाले परमात्मा ने मनुष्यों को अथवा सुख देने वाले जल को उत्पन्न किया है, [कस्मै देवाय हविषा विधेम] उस सुखस्वरूप परब्रह्म की हम श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक अपने अन्तःकरण से उपासना करें।

[मनुष्या वा आपश्चन्द्राः]-शतपथ ब्राह्मण ७ । ३ । १ । २० मनुष्य आपश्चन्द्र हैं क्योंकि [मनुष्या एव हि यज्ञेनाऽनुवन्ति चन्द्रलोकं पितृमार्गानुसारिणः] मनुष्य ही पितृमार्ग का अनुसरण करते हुए यज्ञ के द्वारा चन्द्रलोक को प्राप्त करते हैं।

अथवा, [यः च आपः चन्द्राः प्रथमः जजान] यश्च चन्द्राः आह्लादिका जगत्कारणभूता अपो जलानि प्रथमः आदिभूतः सन् जजानोत्पादितवान् तद्वारा मनुष्यानुत्पादितवानित्यर्थः। सर्व प्रथम प्रकट होने वाले जिस परमात्मा ने सुख देने वाले उस जल को उत्पन्न किया, जिससे जगत की उत्पत्ति होती है और फिर जल से मनुष्यों को उत्पन्न किया।

१४. येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।

योअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥

ऋग्. १० । १२१ । ५ यजु. ३२ । ६

(येन द्यौः उग्रा पृथिवी च दृढा) जिसने द्युलोक तथा तीक्ष्ण स्वभाव वाले सूर्य आदि देवों एवं दृढ़ पृथिवी को धारण कर रखा है, (येन स्वः स्तभितं येन नाकः) जिसने सुख तथा विशेष सुखपूर्ण स्थान, अर्थात् स्वर्ग तथा मोक्ष को धारण कर रखा है, (यः अन्तरिक्षे रजसः विमानः) जो अन्तरिक्ष में विशेष मानयुक्त समस्त लोक-लोकान्तरों को धारण करता है तथा उन्हें गति देता है, (कस्मै देवाय हविषा विधेम) ऐसे सुखस्वरूप परब्रह्म की हम अपने अन्तःकरण से श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक उपासना एवं स्तुति करें।

द्यौः (द्योतन्ते देवा यत्र स्वर्गः आकाशम्) जहाँ देवता विशेष रूप से प्रकाशमान होते हैं वह द्यौः, स्वर्ग अथवा आकाश है।

विमानः-विशेष मान अथवा गति वाले।

नाकः = न + अकः = नाकः।

कः = सुख। अकः = सुख के विपरीत अथवा दुःख। न + अकः = नाकः अर्थात् ऐसा स्थान जहाँ दुःख न हो, स्वर्ग अथवा मोक्ष।

१५. प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्॥

यजु. २३। ६५ (पाठभेद) ऋग्वेद. १०। १२१। १०
अथर्व. ७। ८०। (८५)। ३। (पाठभेद)

[प्रजापते] समस्त प्राणियों की रक्षा करने वाले तथा उनके स्वामी हे परमात्मा! [ता एतानि विश्वा जातानि] उन इन समस्त उत्पन्न हुये प्राणियों एवं पदार्थों का [त्वत् अन्यः न परि बभूव] आपके अतिरिक्त अन्य कोई स्वामी नहीं है आप ही सर्वोपरि हैं अर्थात् केवल आप ही इस विश्व को नियन्त्रण में रखने में समर्थ हैं। [यत् कामाः ते जुहुमः] जिन जिन कामनाओं के साथ हम आपकी शरण में आयें, आपकी उपासना करें [तत् नः अस्तु] हमारी वे समस्त कामनायें पूर्ण हों, हमारे मनोवाञ्छित फल एवं उद्देश्य हमें प्राप्त हों, [वयं रयीणाम् पतयः स्याम] तथा हम लोग समस्त प्रकार के धनों एवं ऐश्वर्यों के स्वामी हों।

१६. स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा ।

यत्र देवाऽअमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥

यजु. ३२ । १०

[यत्र देवाः] जिस परमेश्वर में सभी विद्वान् लोग [अमृतम् आनशानः] मोक्ष अथवा अमृतत्व का उपभोग करते हुये [तृतीये धामन् अधि ऐरयन्त] तृतीय धाम अर्थात् परमात्मा के सर्वश्रेष्ठ परमधाम में स्वछन्द विचरण करते हैं [सः नः बन्धुः] वही हमारा बन्धु है, [जनिता] वही हमें जन्म देने वाला हमारा पिता है, [सः विवाता] वही हमें धारण करने वाला, हमारा पालन पोषण करने वाला तथा हमारे कर्मों के फलों का विधान करने वाला है और [धामानि वेद भुवनानि विश्वा] वही समस्त लोक-लोकान्तरों तथा स्थानों आदि को जानने वाला है ।

देव का अर्थ देवता के साथ-साथ विद्वान् भी होता है । विद्वांसो हि देवाः [शतपथ ब्राह्मण] ।

१७. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम ॥

यजु. ४० । १६, ५ । ३६, तथा ७ । ४३, ऋग्. १ । १८९ । १

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ! (अस्मान् राये सुपथा नय) हमें धन, ऐश्वर्य तथा सर्वतोमुखी अभ्युदय के लिये अच्छे मार्ग से ले चलिये। हे देव ! आप हमारे (विश्वानि वयुनानि विद्वान्) समस्त कर्मों, विचारों तथा मन के भावों को जानने वाले हैं (अस्मत् जुहुराणम् एनः युयोधि) हम से कुटिलता पूर्ण पापों को अलग कर दीजिये (ते भूयिष्ठां नम उक्ति विधेम) हम आपको बारम्बार प्रणाम करते हुये आपकी श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक स्तुति तथा उपासना करते हैं।

स्वस्ति वाचन

१८. आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः।

देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥

यजु. २५। १४ ऋग्. १। ८९। १

(अदब्धासः) किसी के द्वारा नष्ट न किये जा सकने वाले, विघ्नरहित (अपरीतासः) अन्य लोगों के द्वारा प्राप्त न किये जा सकने वाले अर्थात् सर्वश्रेष्ठ अथवा शत्रुओं द्वारा अवरुद्ध न किये जा सकने वाले, (उद्भिदः) शत्रुओं का तथा दुःखों का नाश करने वाले (भद्राः क्रतवः) कल्याणकारी यज्ञ, संकल्प, विचार तथा बल (नः विश्वतः आयन्तु) हमारे पास सब ओर से आयें (यथा अप्रायुवः) जिससे आलस्य रहित होकर (दिवे दिवे रक्षितारः देवाः) दिन प्रतिदिन रक्षा करने वाले देवगण (सदं इत् नः वृधे असन्) सदैव हमारी अभिवृद्धि करने के लिए तत्पर रहें। अथवा, जिस प्रकार

देवगण आलस्य रहित होकर दिन प्रतिदिन हमारी रक्षा करने के लिए तत्पर रहते हैं,उसी प्रकार श्रेष्ठ, कल्याणकारी तथा शक्तिशाली विचार, संकल्प, बुद्धि, बल तथा यज्ञ अर्थात् श्रेष्ठतम कर्म हमारे पास सब ओर से आते रहें।

हमें श्रेष्ठ विचार संकल्प एवं कर्म सब ओर से प्राप्त करना चाहिये तथा यह ध्यान रखना चाहिये कि देवगण हमारी रक्षा तभी करेंगे जब हम सद्‌विचारों को सब ओर से प्राप्त करके उनके अनुसार श्रेष्ठ कर्म करेंगे।

१९.देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाꣳ रातिरभि नो निवर्तताम्।

देवानाꣳ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा न आयुः प्रतिरन्तु जीवसे॥

यजु. २५।१५ ऋग्. १।८९।२

(ऋजूयतां देवानाम्) सरलता एवं सत्यता से युक्त देवों की (भद्रा सुमतिः) कल्याणकारी सुमति तथा (देवानां रातिः) देवों के विभिन्न दान (नः अभि निवर्तताम्) हमारे सामने निरन्तर रहें, हमें सब ओर से निरन्तर प्राप्त हों। (वयं देवानां सख्यम् उप सेदिम) हम देवों की मित्रता प्राप्त करें (देवाः नः आयुः जीवसे प्रतिरन्तु) देवगण हमें जीवित रहने के लिये दीर्घ आयु प्रदान करें।

२०. तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।

पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ।।

ऋग्. १ । ८९ । ५ यजु. २५ । १८

(वयम्) हम (जगतः तस्थुषः पतिम्) चराचर जगत का पालन पोषण तथा रक्षा करने वाले, (धियं जिन्वम्) बुद्धि को पवित्र करने वाले, उसे प्रसन्न एवं तृप्त करने वाले (तम् ईशानम्) सब पर शासन करने वाले उस ईश्वर का (अवसे हूमहे) अपनी रक्षा के लिए आह्वान करते हैं, (यथा पूषा) जिससे कि सब का पोषण करने वाला परमात्मा (नः वेदसाम् वृधे) हमारे ज्ञान, धन एवं ऐश्वर्य की वृद्धि तथा (स्वस्तये) हमारे कल्याण के लिए (अदब्धः रक्षिता पायुः असत्) निरालस एवं अपराजित होकर हमारी रक्षा करने वाला तथा हमारा पालन करने वाला हो ।

२१. स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।

स्वस्ति नस्तार्क्ष्योऽ अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।

ऋग्. १ । ८९ । ६ यजु. २५ । १९

साम. उत्त. २१ । ९ । ३ (क्र. सं. १८७५)

(वृद्धश्रवाः) महान यश तथा प्रचुर अन्न एवं धन वाले (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर (नः स्वस्ति) हमारे लिये कल्याणकारी हों, (स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः) सब कुछ जानने वाले, सर्वज्ञ तथा सबका पालन-पोषण करने वाले परमात्मा हमारा कल्याण करें,

(अरिष्टनेमिः) कभी नष्ट न होने वाले दृढ़ वज्र को धारण करने वाले तथा (तार्क्ष्यः) भक्तों के प्रयोजनों को शीघ्र पूर्ण करने वाले प्रभु (नः स्वस्ति) हमारे योग तथा क्षेम को वहन करें, धारण करें, (स्वस्ति नः बृहस्पतिः दधातु) सूर्य चन्द्र आदि महान देवों एवं महान शक्तियों के स्वामी देवाधिदेव परब्रह्म हमारे लिए सुख एवं कल्याण को धारण करें। श्रवः श्रवणीयं यशः अर्थात् श्रवण करने योग्य यश। वृद्धं प्रभूतं श्रवः, श्रवणीयं अन्नं धनं कीर्तिर्वायस्य सः। महान अन्न, धन तथा यश है जिसका, वह परमात्मा वृद्धश्रवाः है। (तार्क्ष्यः) तूर्णं अर्थं रक्षति इति तार्क्ष्यः, निरुक्त १०। ३। १७ हमारे अर्थ अथवा प्रयोजन को शीघ्र पूरा करने वाला परमात्मा तार्क्ष्य है।

२२. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।

स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः॥

ऋग्. १। ८९। ८ (पाठभेद) यजु. २५। २१
साम. उत्त. २१। ९। २, क्र. सं. १८७४

(यजत्राः देवाः) हे यजनीय देवो! (भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम) हम अपने कानों से कल्याणकारी तथा प्रिय वचनों को सुनें, (भद्रं पश्येम अक्षभिः) हम अपनी आंखों से कल्याणकारी तथा मनोहारी दृश्यों को देखें तथा (स्थिरैः अङ्गैः) हृष्ट-पुष्ट अङ्गों से युक्त (तनूभिः) शरीरों से हम (तुष्टुवांसः) परमात्मा की स्तुति करते हुये (देवहितं) देवों एवं विद्वानों के लिये हितकारी (यदायुः) जो हमारी आयु है, [वि अशेमहि] उसे भली प्रकार प्राप्त करें अर्थात् हम देवों एवं विद्वानों का हित रक्षण करते हुये अपनी पूर्ण आयु सुख पूर्वक व्यतीत करें।

२३. स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः ।

स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना ।।

ऋग्. ५ । ५१ । ११

(अश्विना) सूर्य एवं चन्द्रमा (नः स्वस्ति मिमीताम्) हमारा कल्याण करें, (भगः स्वस्ति) स्वयं ऐश्वर्यवान् तथा ऐश्वर्य प्रदान करने वाले भगवान् हमारा कल्याण करें, (देवी अदितिः) हमें समस्त साधन उपलब्ध कराने वाली तथा सुख देने वाली और स्तुति एवं प्रशंसा के योग्य पृथिवी हमारा कल्याण करे, (अनर्वणः असुरः पूषा नः स्वस्ति दधातु) हमें प्राण एवं बल देने वाला अप्रतिम एवं अपराजित पूषा अर्थात् पालन-पोषण करने वाले भगवान् हमारा कल्याण करें, (द्यावा पृथिवी सुचेतुना नः स्वस्ति) द्युलोक एवं पृथिवी ज्ञान से अर्थात् ज्ञान देकर हमारा कल्याण करें ।

२४. स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः ।

बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः ।।

ऋग्. ५ । ५१ । १२

(स्वस्तये वायुम् उप ब्रवामहै) हम अपने कल्याण के लिए वायु की स्तुति एवं प्रशंसा करें (यः भुवनस्य पतिः) जो समस्त भुवनों का स्वामी है, उस (सोमं स्वस्ति) परमात्मा की कल्याण के लिये स्तुति करें । (स्वस्तये) हम कल्याण के लिये (सर्वगणं बृहस्पतिम्)

समस्त प्राणि समूह के सबसे महान् स्वामी एवं रक्षक अर्थात् परमात्मा की स्तुति करें। (आदित्यासः नः स्वस्तये भवन्तु) आदित्य हमारे लिये कल्याणकारी हों।

२५. विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये।

देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः॥

ऋग्. ५। ५१। १३

(विश्वे देवाः नः अद्या स्वस्तये) समस्त देव आज हमारे कल्याण के लिये हों (वैश्वानरः वसुः अग्निः स्वस्तये) समस्त विश्व को गति देने वाला तथा समस्त प्राणियों को बसाने वाला अर्थात् उनके जीवन का आधार अग्नि हमारे कल्याण के लिए हो। (देवाः ऋभवः स्वस्तये अवन्तु) दिव्य गुणों से युक्त ऋभुगण कल्याण के लिये हमारी रक्षा करें। (रुद्रः न स्वस्ति) दुष्टों को रुलाने वाले रुद्र हमारे लिये कल्याणकारी हों तथा (अंहसः पातु) पापों से हमारी रक्षा करें।

२६. स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति।

स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि॥

ऋग्. ५। ५१। १४

[मित्रावरुणा] हे मित्र एवं वरुण ! [स्वस्ति] हमारा कल्याण कीजिये । [रेवति] धन एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न हे देवि ! [पथ्ये स्वस्ति] जीवन मार्ग में हमारा कल्याण कीजिये । [इन्द्रः च अग्निः च स्वस्ति] इन्द्र और अग्नि हमारा कल्याण करें । [अदिते] हे अदिति ! [नः स्वस्ति कृधि] हमारा कल्याण कीजिये ।

(अ) १. दिति = नाशवान्, अदिति = अविनाशी, परमात्मा ।
२. अदिति, देवमाता । निरुक्त । ४ । २२ ॥
३. निघण्टु के अनुसार पृथिवी, गौ तथा वाणी को भी अदिति कहते हैं ।
४ अदितिरेवादित्यः, अदिति ही आदित्य है ।

(ब) १. मित्रावरुणौ = प्राण एवं अपान ।
२. ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार अहर्वै मित्रो रात्रिर्वरुणः, दिन ही मित्र है, रात्रि वरुण है ।

२७. स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव ।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि ॥

ऋग्. ५ । ५१ । १५

हम (सूर्याचन्द्रमसी इव स्वस्ति पन्थां अनुचरेम) सूर्य और चन्द्रमा के समान जगत् का कल्याण करने वाले मार्ग पर चलें तथा (पुनः) बार-बार, (ददता, अघ्नता, जानता) दान देने वालों, हिंसा न करने वालों एवं विद्वानों के (संगमेमहि) साथ चलें, उनसे मिलें तथा उनके सम्पर्क में आयें ।

इस मन्त्र में सूर्य एवं चन्द्रमा के समान कल्याणकारी मार्ग पर चलने का कितना महान आदर्श मनुष्य जीवन के लिये निर्धारित किया गया है और यह निर्देश दिया गया है कि ऐसा करने के लिये हमें अहिंसा के महाव्रत का पालन करने वाले दयावान्, परोपकारी, दान देने वाले तथा विद्वान् पुरुषों का साथ करना चाहिये, नीचों का नहीं।

२८. ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः।

ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

अथर्व. १९। ११। ५ (पाठभेद) ऋग्. ७। ३५। १५

(ये देवानां यज्ञियानां) जो देवों, श्रेष्ठ विद्वानों तथा यज्ञ करने वालों में [यज्ञिया] पूजनीय है, [मनोः यजत्राः] जो मनस्वी तथा आदरणीय एवं यजनीय हैं,जो निकट समागम एवं सम्पर्क किये जाने के योग्य हैं, (अमृता) जो अमृतत्व को प्राप्त करने के योग्य हैं, जीवन मुक्त है, (ऋतज्ञाः) जो ऋत एवं सत्य के ज्ञाता हैं, (ते अद्य नः) वे आज हमें (उरुगायम् रासन्ताम) बहुतों से गाया हुआ, बहुत से विद्वानों द्वारा उपदिष्ट किया गया प्रशंसनीय ज्ञान दें। (यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात) आप सब देव एवं श्रेष्ठ विद्वान् कल्याणकारी उपायों से सदैव हमारी रक्षा करें।

२९. येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः।

उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये

ऋग्. १०। ६३। ३

(येभ्यः) जिनके लिये (माता अदितिः) माता अदिति तथा (अद्रिबर्हाः द्यौः) मेघों से आच्छादित अन्तरिक्ष (मधुमत्) माधुर्य युक्त (पीयूषं पयः) अमृत तुल्य दुग्ध, जल तथा अन्य भोज्य पदार्थ (पिन्वते) प्रदान करता है, (तान्) ऐसे उन (उक्थ शुष्मान्) प्रशंसनीय बल वाले(वृषभरान्)सुखों की वर्षा करने वाले(सुऽअप्नसः) तथा उत्तम कर्म करने वाले आदित्यों की (स्वस्तये) अपने कल्याण के लिये (अनुमद) स्तुति करो, प्रार्थना करो।

३०. नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः।

ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये

ऋग् १०। ६३। ४

(अनिमिषन्तः) बिना पलक झपकाये हुये अर्थात् सदैव जागरूक रहकर (नृचक्षसः) मनुष्यों के कर्मों पर दृष्टि रखने वाले तथा उन्हें सही मार्ग दिखाने वाले, (देवासः अर्हणा) पूजनीय देवों ने, विद्वानों ने भक्ति एवं उपासना द्वारा(बृहत् अमृतत्वं आनशुः)महान अमृतत्व को, मोक्ष को प्राप्त किया है। (ज्योतिः रथाः) ज्ञान रूपी ज्योतिर्मय रथ वाले, (अहिमायाः) प्रज्ञावान, अप्रतिहत बुद्धि वाले (अनागसः) पाप रहित ये देव, (दिवः वर्ष्माणि) द्युलोक में उच्च स्थान पर अथवा भगवान के आनन्दमय परम धाम में (स्वस्तये वसते) लोगों के कल्याण के लिये निवास करते हैं।

३१. सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम् ।

तां आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्यां अदितिं स्वस्तये

ऋग्. १० । ६३ । ५

(सम्राजः ये सुवृधः यज्ञं आययुः) अपने तेज से कान्तिमान तथा उत्तम प्रकार से वृद्धि को, महानता को प्राप्त हुये जो देव यज्ञ में आते हैं [अपरिह्वृताः दिवि क्षयं दधिरे) तथा जो सर्वथा अपराजित रहकर द्युलोक में निवास करते हैं, [तान् महः आदित्यान् अदितिं] उन महान आदित्यों तथा उनकी माता अदिति की [स्वस्तये] अपने कल्याण के लिये [नमसा सुवृक्तिभिः आ विवास] हविरूप अन्न तथा सुन्दर स्तुतिओं से नम्रता पूर्वक सेवा करो ।

३२. को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ

विश्वे देवासो मनुषो यति ष्ठन ।

को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करशो

नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये ।।

ऋग्. १० । ६३ । ६

(विश्वे देवासः) हे समस्त विद्वानो ! (कः वः स्तोमं राधति) आप लोगों में से कौन स्तुति करने वाले उस मन्त्र समूह को सिद्ध करता है (यं जुजोषथ) जिसका देवगण प्रेम पूर्वक सेवन करते हैं, अर्थात् जिससे देवगण प्रसन्न होते हैं (तुविजाताः मनुषः यति स्थन) बहुत संख्या में विद्यमान हे मनुष्यो ! आप लोग जितने भी हैं, (कः अध्वरं अरं करत्) उनमें से कौन उस यज्ञ को स्तुतियों तथा हवियों से अलंकृत करता है, [यः नः अति पर्षत् अंहः स्वस्तये] जो कल्याण के लिये हमारे पापों को अत्यन्त दूर करता है।

२३. येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्त होतृभिः

त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये ।।

ऋग्. १० । ६३ । ७

(येभ्यः मनुः मनसा समिद्ध अग्निः) जिनके लिये मननशील पुरुष मनसे अर्थात् श्रद्धा पूर्वक अग्नि प्रदीप्त करके (सप्त होतृभिः) सात होम कर्ताओं के साथ (प्रथमां होत्रां आयेजे) श्रेष्ठ यज्ञ का आयोजन करता है, (ते आदित्याः) वे आदित्य अर्थात् देवगण (नः अभयं शर्म यच्छत) हमें अभय तथा सुख प्रदान करें (स्वस्तये सुपथा सुगा कर्त) तथा हमारे कल्याण के लिये हमारे जीवन के मार्ग को श्रेष्ठ तथा सुगम करें । सप्त होतृभिः–नेत्र, श्रोत्र, वाणी, मन, प्राण, अपान तथा व्यान, जीवन यज्ञ के ये सात होता हैं ।

३४. य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः।

ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये ।।

ऋग्. १० । ६३ । ८

(देवासः) हे देव ! (प्रचेतसा: मन्तवः ये विश्वस्य जगतः स्थातुः) उत्कृष्ट, ज्ञानवान् तथा मननशील देव जो समस्त चराचर जगत तथा (भुवनस्य ईशिरे) समस्त लोकों के स्वामी हैं, (ते) वे देवगण (नः कृतात् अकृतात् एनसः) हमारे द्वारा किये हुये पापों तथा न किये हुये पापों अर्थात् आवश्यक कर्म न करने से उत्पन्न हुये पापों से (अद्य स्वस्तये परि पिपृत) आज हमारे कल्याण के लिये हमारी सब ओर से रक्षा करें,हमारे पापों का नाश करें तथा हमारा परिपालन करें ।

कृत—वह पाप हैं जो किये गये हैं जैसे सज्जनों को पीड़ा पहुँचाना, दूसरों की सम्पत्ति का अपहरण कर लेना आदि । अकृत—वह पाप हैं, जो कर्तव्य न करने से होते हैं जैसे माता पिता की सेवा न करना, परोपकार न करना आदि । कुछ विद्वानों ने अकृत पाप का अर्थ मानसिक पाप किया है अर्थात् जिनके लिये मन से इच्छा की गयी है किन्तु वास्तव में किये नहीं गये ।

३५. भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेंऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम् ।

अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये।।

ऋग्. १० । ६३ । ९

(भरेषु) हम जीवन के संग्रामों में (सुहवं शोभनाह्वानम्) सुगमता से बुलाये जा सकने वाले, अथवा सुन्दर नाम वाले तथा सुख एवं उत्तम पदार्थों को देने वाले (अंहः मुचम्) पापों से छुड़ाने वाले (इन्द्रं हवामहे) इन्द्र का आह्वान करते हैं तथा (सुकृतं दैव्यं जनं) श्रेष्ठ कर्म करने वाले, दिव्य शक्तियों से सम्पन्न (अग्निं मित्रं वरुणं भगं द्यावा पृथिवी मरुतः) अग्नि, मित्र, वरुण, ऐश्वर्य प्रदान करने वाले भग, द्युलोक, पृथिवी तथा मरुतों को (सातये स्वस्तये) अन्न आदि प्राप्त करने के लिये एवं अपने कल्याण के लिये (हवामहे) आदर पूर्वक बुलाते हैं।

३६. सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।

दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये ।।

ऋग्. १० । ६३ । १०

सुत्रामाणं पृथिवीं) उत्तम प्रकार से रक्षा करने वाली, विस्तृत (अनेहसं) पाप रहित, (द्याम्) प्रकाशयुक्त (सुशर्माणं) उत्तम सुख देने वाली (अदितिं) नष्ट न होने वाली (सुप्रणीतिं) उत्तम रूप से निर्मित, [स्वरित्राम] उत्तम चप्पुओं से युक्त [अनागसं] पाप रहित [अस्रवन्तीं] न रिसने वाली, छिद्र रहित [दैवीं नावं] दैवी नाव पर हम अपने कल्याण के लिये [आरुहेम] आरोहण करें।

३७. विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः ।

सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये ।।

ऋग्. १० । ६३ । ११

[विश्वे यजत्राः देवाः] हे समस्त पूजनीय देवो ! [अधि वोचत ऊतये] हमारी रक्षा के लिये वचन दीजिये, हमें अभय दान दीजिये अभिह्रुतः दुःएवायाः नः त्रायध्वम्] चारों ओर से हमारा विनाश करने वाली दुर्गति से हमारी रक्षा कीजिये । [सत्यया देवहूत्या] हम सत्य स्तुतियों से [शृण्वतः वः] हमारी प्रार्थना को सुनने वाले आप सब देवों का [अवसे स्वस्तये हुवेम] अपनी रक्षा तथा कल्याण के लिये आह्वान करते हैं ।

३८. अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः ।

आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये ।।

ऋग्. १० । ६३ । १२

[देवाः] हे देवो ! (अमीवां अप) हमसे रोगों तथा रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं आदि को दूर कीजिये, (विश्वां अनाहुतिं अरातिं अप) देवों के लिये आहुति तथा पात्र व्यक्तियों को दान न देने वाले समस्त लोगों को हमसे दूर कीजिये (अघायतः दुर्विदत्रां द्वेषः अस्मत् आरे युयोतन) पाप करने वाले तथा हमें दुख देने वाले दुष्ट बुद्धि वाले शत्रुओं को हमसे दूर कर दीजिये (नः उरु शर्म आ यच्छत स्वस्तये) तथा हमारे कल्याण के लिये हमें विस्तृत तथा विपुल सुख प्रदान कीजिये ।

३९. अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि ।

यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरितास्वस्तये ।।

ऋग्. १० । ६३ । १३

(आदित्यासः) हे आदित्यो ! अथवा हे विद्वानो ! (४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुये चारों वेदों का अध्ययन करने के उपरान्त बने प्रकाण्ड विद्वान् को आदित्य कहते हैं) (यम् सुनीतिभिः विश्वानि दुरिता स्वस्तये अति नयथ) कल्याण करने के लिये आप जिसे उत्तम नीतियों तथा उत्तम मार्ग से समस्त पापों, बुराइयों तथा दुर्गतियों से पार ले जाते हैं (सः मर्तः) वह मनुष्य (विश्वः अरिष्टः प्र एधते) सब प्रकार के अनिष्टों से रहित होता हुआ तथा बिना किसी हानि अथवा हिंसा को प्राप्त हुये, सब प्रकार से समृद्धि को प्राप्त होता है (धर्मणः परि प्रजाभिः प्रजायते) तथा जीवन के हर क्षेत्र में धर्मानुसार आचरण करता हुआ श्रेष्ठ सन्तान एवं पशुओं आदि से सम्पन्न होता है ।

४०. यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो हिते धने ।

प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा रुहेमा स्वस्तये ।।

ऋग्. १० । ६३ । १४

(देवासः) हे देवो ! (वाजसातौ यं अवथ) अन्न की प्राप्ति के लिये प्रयोग किये जाने वाले जिस रथ की आप रक्षा करते हैं,जिसका ठीक प्रकार से रख रखाव करते हैं, (मरुतः) हे मरुतो, हे वीरो !

(शूरसाता ते धने) वीरों के करने योग्य संग्राम में शत्रुओं के संचित धन को प्राप्त करने के लिये जिस रथ का तुम प्रयोग करते हो, (इन्द्र) हे इन्द्र ! (प्रातर्यावाणं सानसिम्) प्रातः काल से ही युद्ध के लिये जाने में सेवनीय अर्थात् प्रयोग किये जाने योग्य (अरिष्यन्तम्)उत्तम, तथा नाश को प्राप्त न होने वाले(रथं स्वस्तये आरुहेम) उस रथ पर हम अपने कल्याण के लिये आरूढ़ हों ।

४१. स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्य१प्सु वृजने स्वर्वति ।

स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये मरुतो दधातन ।।

ऋग्. १० । ६३ । १५

(स्वस्ति नः पथ्यासु) मार्गों में हमारा कल्याण हो, (धन्वसु) जलरहित मरुस्थल आदि में हमारा कल्याण हो (स्वस्ति अप्सु) जलों में अर्थात् जल मार्गों में अथवा आकाश में यात्रा करते हुये अथवा नदियों आदि में स्नान करते हुये हमारा कल्याण हो, (वृजने स्वर्वति) सब प्रकार के आयुधों से युक्त युद्ध में हमारा कल्याण हो, (स्वस्ति नः पुत्र कृथेषु योनिषु) पुत्र उत्पन्न करने वाली हमारी स्त्रियों की योनियों में कल्याण हो अर्थात् उन्हें पुत्र को जन्म देने में अत्यधिक कष्ट अथवा अन्य किसी प्रकार का दुःखदायी रोग आदि न हो (स्वस्ति राये मरुतः दधातन) हे मरुतो ! धन एवं ऐश्वर्य प्राप्त करने में हमारे कल्याण को धारण करो ।

४२. स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या वाममेति ।

सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा भवतु देवगोपा ।।

ऋग्. १० । ६३ । १६

(या स्वस्तिः इत् हि प्रपथे) जो पृथिवी प्रकृष्ट मार्गों के लिये कल्याणकारी होती है अर्थात् जिस पर उत्तम मार्ग बनाये जाते है जिन पर चलकर लोगों का कल्याण होता है, उन्हें सुख मिलता है, (रेक्णस्वती श्रेष्ठा वामं अभि एति) जो धन धान्य से युक्त श्रेष्ठ पृथिवी सुन्दर एवं श्रेष्ठ कार्यों को प्राप्त होती है अर्थात् जहाँ यज्ञादि श्रेष्ठ कार्य किये जाते हैं, (सा नः अमा सा अरणे निपातु) वह पृथिवी हमारे गृहों की रक्षा करे तथा वही अरण्य आदि अन्य स्थानों में निरन्तर हमारी रक्षा करे (सु आवेशा भवतु देव गोपा) तथा देवों से रक्षित वह पृथिवी हमारे लिये उत्तम निवास स्थान वाली हो ।

४३. इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु

श्रेष्ठतमाय कर्मण आप्यायध्वमघ्न्या इन्द्राय भागं

प्रजावतीरनमीवा अयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशंसो

ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि ।

यजु. १ । १

(इषे त्वा ऊर्जे त्वा वायवः स्थ) हे मनुष्यो ! तुम्हें अन्न तथा रस देने के लिये यह वायु है। यहां रस का तात्पर्य वृष्टि से प्राप्त होने वाले जल तथा ओषधियों एवं फलों आदि में जल से उत्पन्न होने वाले रस से है। तात्पर्य यह है कि मनुष्यों को शुद्ध अन्न, जल एवं रस की प्राप्ति के लिये वायु के महत्व को समझ कर उसे पवित्र रखना चाहिये, उसे दूषित नहीं करना चाहिये। (देवः वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले, उसे प्रेरणा तथा ज्ञान का प्रकाश देने वाले परमात्मा उक्त उद्देश्यों की पूर्ति के लिये अर्थात् शुद्ध अन्न, जल तथा वायु की प्राप्ति के लिये तुम्हें श्रेष्ठतम कर्मों में अर्थात् यज्ञों आदि में (प्रार्पयतु) भली प्रकार लगायें और इन श्रेष्ठतम कर्मों से तुम (आप्यायध्वम्) सर्वतोमुखी उन्नति को प्राप्त हो। [अघ्न्याः इन्द्राय भागं प्रजावतीः अनमीवाः अयक्ष्माः] इन्द्राय भागम् अर्थात् परम ऐश्वर्य तथा धन की प्राप्ति के लिये [अघ्न्याः] तुम्हारी गौयें [प्रजावतीः] बहुत सन्तान वाली तथा [अनमीवाः अयक्ष्माः] राजयक्ष्मा एवं अन्य समस्त प्रकार के रोगों से मुक्त हों। [मा वः स्तेनः ईशत] हे मनुष्यो ! तुम ऐसी व्यवस्था करो कि चोर तुम पर शासन न कर सकें [मा अघशंसः] तथा समाज में पाप एवं पापियों की प्रशंसा करने वाले न हों। [ध्रुवा अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीः] हे प्रभो ! गोपतौ अर्थात् गौओं, पृथिवी एवं वेद आदि की रक्षा करने वाले इस श्रेष्ठ पुरुष के पास बहुत सी गौयें तथा धन सम्पत्ति आदि अचल होकर रहें। [यजमानस्य पशून् पाहि] हे प्रभो ! इस यज्ञ करने वाले श्रेष्ठ पुरुष की सन्तान एवं पशुओं की रक्षा कीजिये।

अन्नं वा इषम्। कौ. ब्रा. २८। ५। ऊर्ग् रस।

शतपथ. १। ७। १। १ में इस मन्त्र का अर्थ बताते हुये कहा गया है

("वृष्ट्यै तदाह यदाह इषे त्वेति। ऊर्जे त्वा इति। यो वृष्टा-

दूर्रसो जायते तस्मै तदाह् ।'') जब वह् कहता है 'रस के लिये' तो उसका तात्पर्य होता है वृष्टि के लिये जिससे रस उत्पन्न होता है और जब वह् कहता है 'अन्न के लिये' तो उसका तात्पर्य होता है उस अन्न के लिये जो वृष्टि से,जल से उत्पन्न होता है ।

(वायवः) वा गतिगन्धनयोः । अयं वै वायुः यो अयं पवते । यह् जो चलता है वही वायु है । यह् वह है जो उस सबको लाता है, जो बरसता है ।

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म । यज्ञ ही श्रेष्ठतम कर्म है ।

सविता वै देवानां प्रसविता । शतपथ । १ । ७ । १ । १

सविता सर्वस्य प्रसविता । सबको उत्पन्न करने वाले परमात्मा सविता हैं ।

प्रजापतिर्वै सविता । तां. ब्रा. १६ । ५ । १७

(अघ्न्या इन्द्राय भागं प्रजावतीः अनमीवा अयक्ष्मा) अघ्न्याः को सम्बोधन मानकर अर्थ करने पर इसका अर्थ होगा, हे गौवो ! यज्ञ के लिये शुद्ध दुग्ध एवं घृत आदि उत्पन्न करने के लिये तुम सन्तान वाली, और सामान्य रोगों तथा विशेष रूप से यक्ष्मा रोग से रहित अर्थात् पूर्ण स्वस्थ हो ।

यद् यजते तद् यजमान । शतपथ ब्राह्मण । ३ । २ । १ । १७

यजुर्वेद के इस प्रथम मन्त्र में शुद्ध पर्यावरण द्वारा शुद्ध जल एवं पौष्टिक अन्न तथा स्वस्थ पशु प्राप्त करने के लिये श्रेष्ठ कर्म करने का निर्देश दिया गया है और कहा गया है कि समाज में चोरों को शासक न बनने दिया जाय तथा पापियों की प्रशंसा न की जाय ।

४४. यन्मे छिद्रं चक्षुषो हृदयस्य मनसो वातितृण्णं

बृहस्पतिर्मे तद्दधातु ।

शं नो भवतु भुवनस्य यस्पतिः ।।

यजु. ३६ । २

(मे) मेरे (चक्षुषः) नेत्र की तथा (हृदयस्य) हृदय एवं अन्तः-करण तथा बुद्धि की (यत्) जो (छिद्रम्) न्यूनता अथवा दोष है (वा) तथा मेरे (मनसः) मन की (अतितृण्णम) जो व्याकुलता एवं दोष है, (मे तत्) मेरे उस दोष को, न्यूनता को (बृहस्पतिः) सूर्य आदि महान देवों का स्वामी परमात्मा (दधातु) पूर्ण करे, ठीक करे । (भुवनस्य यः पतिः) समस्त संसार का जो स्वामी एवं रक्षक है [शं नः भवतु] वह परमेश्वर हमारे लिये कल्याण कारी हो ।

४५. इन्द्रो विश्वस्य राजति । शं नो अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ।।

साम. पूर्वा. ४ । ७ । १० यजु. ३६ । ८
क्रम सं. ४५६ [पाठभेद]

[इन्द्रः विश्वस्य राजति] परम ऐश्वर्यवान् परमेश्वर समस्त विश्व में प्रकाशित हो रहा है, शोभायमान हो रहा है। [तस्य भासा सर्वमिदं विभाति,-कठोपनिषद्] उसी का प्रकाश, उसी का सौन्दर्य समस्त जगत् को शोभायमान कर रहा है। [शं नः अस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे] दो पैरों से चलने वाले मनुष्यों एवं पक्षियों आदि तथा चार पैरों से चलने वाले हमारे समस्त पशुओं का कल्याण हो।

४६. शं नो मित्रः शं वरुणः शं नो भवत्वर्यमा ।

शं न इन्द्रो बृहस्पतिः शं नो विष्णुरुरुक्रमः ।।

यजु. ३६ । ९
अथर्व. १९ । ९ । ६ (पाठभेद) ऋग. १ । ९० । ९

(मित्रः नः शं) सब का प्रिय मित्र, जगदीश्वर हमारे लिये कल्याण कारी हो (शं वरुणः) सर्व साक्षी तथा सर्व श्रेष्ठ परमात्मा हमारे लिये कल्याण कारी हो । (शं नः भवतु अर्यमा) न्यायकारी ईश्वर हमारे लिये कल्याण कारी हो । (बृहस्पतिः) वेदवाणी एवं महान ब्रह्माण्ड का रक्षक (इन्द्रः) परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर (नः शम्) हमारे लिये कल्याणकारी हो (उरुक्रमः विष्णुः नः शम्) महान् पराक्रम अथवा विस्तृत पद वाला सर्वव्यापक परमात्मा हमारे लिये कल्याण कारी हो । व्याप्नोतीति विष्णुः । सर्वव्यापक होने से भगवान का नाम विष्णु है ।

४७. शं नो वातः पवताꣳ शं नस्तपतु सूर्यः ।

शं नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्यो अभि वर्षतु ।।

यजु. ३६ । १०

(शं नः वातः पवताम्) वायु हमारे लिये सुखकारी होकर बहे, (शं नः तपतु सूर्यः) सूर्य हमारे लिये सुखकारी होकर तपे (शं नः कनिक्रदत् देवः) कड़कड़ाता हुआ विद्युत् देव हमारे लिये सुखकारी हो, (पर्जन्यः अभि वर्षतु) तथा मेघ हमारे चारों ओर सुखकारी वर्षा करे ।

४८. अहानि शं भवन्तु नः शꣳ रात्रीः प्रति धीयताम् । शं न

इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शं न इन्द्रा वरुणा रातहव्या

शं न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रासोमा

सुविताय शं योः ।।

ऋग्. ७ । ३५ । १ (पाठभेद) यजु. ३६ । ११
अथर्व. १९ । १० । १ (पाठभेद)

(अहानि शं भवन्तु नः) दिन हमारे लिये कल्याण कारी हों, (श रात्रीः प्रतिधीयताम्) रात्रि हमारे लिये कल्याण को धारण करे (इन्द्राग्नी नः शं भवतां अवोभिः) समस्त रक्षाओं के साथ इन्द्र एवं अग्नि हमारे लिये कल्याण कारी हों (शं नः इन्द्रा वरुणा रातहव्या) जिन्हें हवि अर्पित की गयी है, ऐसे इन्द्र एवं वरुण हमारे लिये सुखकारी हों (शं नः इन्द्रा पूषणा वाजसातौ) इन्द्र एवं पूषा युद्ध में हमारा कल्याण करने वाले हों । (शं इन्द्रा सोमा सुविताय) इन्द्र एवं सोम हमारे कल्याण के लिये शान्ति दायक हों (शं योः) तथा रोगों का शमन करके एवं भय को दूर करके हमारे लिये सुखकारी हों ।

४९. शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।

शं योरभि स्रवन्तु नः ।।

ऋग्. १० । ९ । ४ यजु. ३६ । १२
अथर्व. १ । ६ । १ साम. पूर्वा. १ । ३ । १३ क्र. सं. ३३

(देवी आपः) दिव्य गुणों से युक्त जल (पीतये नः अभिष्टये) पीने के लिये तथा हमारे अभीष्ट कार्यों की सिद्धि के लिये (शं भवन्तु) सुखकारी हों, शान्तिदायक हों (शं योः अभिस्रवन्तु नः) तथा रोग एवं भय आदि का शमन करके हमारे ऊपर चारों ओर से सुख की वर्षा करें ।

५०. स्योना पृथिवि नो भवानृक्षरा निवेशनी ।

यच्छा नः शर्म सप्रथाः ।।

यजु. ३६ । १३
यजु. ३५ । २१ (पाठभेद) ऋग्. १ । २२ । १५ (पाठभेद)

(पृथिवि) हे पृथिवी ! (नः स्योना अनृक्षरा) हमारे लिये सुख देने वाली तथा निष्कंटक एवं (निवेशनी भव) निवास के लिये उत्तम स्थान देने वाली होइये (नः सप्रथाः शर्म यच्छ) तथा हमें विस्तृत सुख एवं सुखदायी निवास स्थान प्रदान कीजिये ।

५१. शं नो भगः शमु नः शंसो अस्तु शं नः पुरंधिः शमु सन्तु रायः ।

शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः शं नो अर्यमा पुरुजातो अस्तु ।।

अथर्व. १९ । १० । २ ऋग्. ७ । ३५ । २

(शं नः भगः) ऐश्वर्य प्रदान करने वाले भगवान हमारे लिये सुखकारी हों (उ) तथा (शम् नः शंसः अस्तु) प्रशंसित देव हमें सुख एवं शान्ति प्रदान करने वाले हों (पुरंधिः नः शं) विशाल बुद्धि हमें सुख देने वाली हो, (उ) तथा (शम् रायः सन्तु) विभिन्न प्रकार के धन हमें शान्ति एव सुख देने वाले हों. (शं नः सत्यस्य सुयमस्य शंसः) उत्तम नियम पूर्वक बोला जाने वाला प्रशंसनीय सत्य हमें सुख देने वाला हो (पुरुजातः अर्यमा नः शं अस्तु) तथा अत्यधिक प्रशंसित न्यायकारी भगवान हमारे लिये कल्याण कारी हों ।

५२. शं नो धाता शमु धर्ता नो अस्तु शं न उरूची भवतु स्वधाभिः ।

शं रोदसी बृहती शं नो अद्रिः शं नो देवानां सुहवानि सन्तु ।।

ऋग्. ७ । ३५ । ३

(शं नः धाता) धारण करने वाला विधाता हमारे लिये सुखकारी हो (उ धर्ता नः शं अस्तु) तथा पुष्टि करने वाला प्रभु हमारे लिये सुखकारी हो. [शं नः उरूची स्वधाभिः भवतु) गति करने वाली तथा बहुत से पदार्थों को उत्पन्न करने वाली पृथिवी अन्नों के साथ हमें सुख देने वाली हो अथवा धारण किये हुये जलों के द्वारा

विस्तृत अन्तरिक्ष हमारे लिये सुखकारी हो। [शं रोदसी बृहती] महान द्युलोक एवं पृथिवी हमारे लिये सुख एवं शान्ति देने वाले हों, [शं नः अद्रिः] पर्वत तथा मेघ हमारे लिये सुखकारी हों, [शं नः देवानां सुहवानि सन्तु] देवों की स्तुतियां, उनके सुन्दर आवाहन हमें शान्ति देने वाले हों।

५३. शं नो अग्निर्ज्योतिरनीको अस्तु शं नो मित्रावरुणावश्विना शम्।

शं नः सुकृतां सुकृतानि सन्तु शं न इषिरो अभि वातु वातः।।

ऋग्. ७।३५।४

[ज्योतिः अनीकः ज्योतिर्मुखः अग्निः] ज्योति स्वरूप मुख वाली अग्नि [नः शं अस्तु] हमारे लिये सुखकारी हो, [मित्रा वरुणा नः शं] मित्र और वरुण अथवा प्राण एवं अपान हमारे लिये सुख कारी हों, [अश्विना शं] अश्विनी देव अर्थात् सूर्य एवं चन्द्र हमारे लिये सुखकारी हों। [सुकृतां सुकृतानि नः शं सन्तु] सत्कर्म करने वालों के सत्कर्म, पुण्य कर्म हमें शान्ति देने वाले हों [इषिरः वातः नः शं अभि वातु] तथा गति शील वायु हमारे लिये सुखकारी होकर सब ओर से बहे।

५४. शं नो द्यावापृथिवी पूर्वहूतौ शमन्तरिक्षं दृशये नो अस्तु।

शं न ओषधीर्वनिनो भवन्तु शं नो रजसस्पतिरस्तु जिष्णुः।।

ऋग्. ७।३५।५

(पूर्वहूतौ द्यावा पृथिवी) पूर्व में आह्वान किये हुये, अथवा पहले जिनसे प्रार्थना की गयी है, ऐसे द्युलोक एवं पृथिवी हमारे लिये सुखकारी हों, (शं अन्तरिक्षं दृशये नः अस्तु) अन्तरिक्ष हमें देखने के लिये सुखकारी हो अथवा अन्तरिक्ष को देखकर हम सुख प्राप्त करें, (शं नः ओषधीः वनिनः भवन्तु) ओषधियां अर्थात् गेहूं जौ आदि अन्न जिनके पौधे फसल पकने के बाद सूख जाते हैं तथा वृक्षादि वनस्पतियां हमारे लिये सुखकारी हों, (शं नः रजसः पतिः जिष्णुः अस्तु) लोक लोकान्तरों का जयशील स्वामी इन्द्र अथवा परमात्मा हमारे लिये सुखकारी हो। जिन वृक्षों पर फूल नहीं आते जैसे पीपल, गूलर आदि उन्हें वनस्पति कहते हैं तथा जिन पर फूल और फल आते हैं जैसे आम, सेव आदि उन्हें वृक्ष कहते हैं।

५५. शं न इन्द्रो वसुभिर्देवो अस्तु शमादित्येभिर्वरुणः सुशंसः।

शं नो रुद्रो रुद्रेभिर्जलाषः शं नस्त्वष्टा ग्नाभिरिह शृणोतु॥

ऋग्. ७। ३५। ६

(इन्द्रः वसुभिः देवः नः शं अस्तु) दिव्य गुणों से युक्त प्रकाशमान इन्द्र अष्ट वसुओं के साथ हमारे लिये सुखकारी हों अथवा दिव्य गुणों से युक्त प्रकाशमान सूर्य (वसुभिः) मरुतों अथवा अन्तरिक्ष में चलने वाली वायुओं के साथ हमारे लिये सुखकारी हों। वायुर्वै वसुरन्तरिक्षसत् शत. ६। ७। ३। ११ (सुशंसः वरुणः आदित्येभिः शं) प्रशंसनीय वरुण द्वादश आदित्यों के साथ हमारे लिये सुखकारी हों। अथवा, प्रशंसनीय संवत्सर बारह मासों के साथ हमारे लिये सुखकारी हो। संवत्सरो वै वरुणः। शत. ४। १। ४। १० । कतम आदित्या इति ? द्वादशमासाः संवत्सरस्य। शत. ११। ६। ३। ८

(जलाष: रुद्र: रुद्रेभि: न: शं) दुखों को नष्ट करने वाले रुद्र, रुद्रगणों के साथ हमारे लिये सुखकारी हों। अथवा, दुखों का निवारण करने वाले परमात्मा, एकादश रुद्र अर्थात् जीवात्मा एवं दश प्राणों के साथ हमारे लिये सुखकारी हों। (शं नः त्वष्टा ग्नाभि: इह शृणोतु) अंधकार में छिपे हुये रूपों को प्रकाश के द्वारा अलग अलग स्पष्ट करने वाला सूर्य अपनी रश्मियों के साथ हमारे लिये सुखकारी हो तथा यहां हमारी प्रार्थना को सुने अथवा अपने प्रकाश के द्वारा यहाँ प्राप्त हो।

छन्दांसि वै ग्ना:। शत. ६। ५। ४। ७

छन्दांसि सूर्य रश्मय:।

त्वष्टा हि रूपाणि विकरोति। तै. ब्रा. २। ७। २। १

श्री सायणाचार्य ने ग्नाभि: का अर्थ देवपत्नीभि: लिखा है, जो यहाँ उचित प्रतीत नहीं होता।

५६. शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः शमु सन्तु यज्ञाः।
शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं नः प्रस्व १: शम्वस्तु वेदिः॥

ऋग्. ७। ३५। ७

(शं नः सोम: भवतु) सोम हमारे लिये सुखकारी हो, (ब्रह्म शं नः) वेद हमारे लिये सुखकारी हो, (शं नः ग्रावाण:) सोम कूटने के पत्थर हमारे लिये सुखकारी हों. (शं उ सन्तु यज्ञा:) तथा यज्ञ मारे लिये सुखकारी हों। (शं नः स्वरूणां मितय: भवन्तु) यज्ञ के स्तम्भों के [illegible] मारे लिये सुखकारी हों, (शं नः प्रस्व:) ओषधियां मारे लिये सुखकारी हों, (शं उ अस्तु वेदि:) तथा यज्ञ वेदि हमारे लये सुखकारी हो।

५७. शं नः सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो भवन्तु ।

शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः शमु सन्त्वापः।।

अथर्व. १९ । १० । ८ ऋग्. ७ । ३५ । ८

(शं नः सूर्यः उरुचक्षा उदेतु) विस्तृत तेजवाला सूर्य हमारे लिये सुखकारी होकर उदित हो, [शं नः चतस्रः प्रदिशो भवन्तु] चारों दिशायें एवं प्रदिशायें हमारे लिये सुखकारी हों । (शं नः पर्वताः ध्रुवयः भवन्तु) अचल पर्वत हमारे लिये शान्ति एवं सुख देने वाले हों, (शं नः सिन्धवः) नदियाँ एवं समुद्र हमारे लिये सुखकारी हों (शं उ नः सन्तु आपः) तथा जल हमारे लिये शान्ति एवं सुख देने वाले हों ।

५८. शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः स्वर्काः ।

शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो भवित्रं शम्वस्तु वायुः।।

अथर्व. १९ । १० । ९ ऋग्. ७ । ३५ । ९

(अदितिः व्रतेभिः नः शम् भवतु) देव माता अदिति अथवा प्रकृति श्रेष्ठ नियमों के साथ हमें सुख दे, (सु अर्काः मरुतः नः शं भवन्तु) उत्तम स्तुति योग्य तेजस्वी बलवान मरुत हमारे लिये सुखकारी हों (शं नः विष्णुः) विष्णु हमारे लिये कल्याणकारी हों (शं उ पूषा नः अस्तु) तथा पालन पोषण करने वाले पूषा देव हमें शान्ति देने वाले हों (शं नः भवित्रं शं उ अस्तु वायुः) जल हमारे लिये शान्ति दायक हों तथा वायु हमारे लिये सुखकारी हो । मरुतः

का अर्थ बादलों को लाने वाली वायु भी होता है। अदिति का अर्थ अविनाशी परमात्मा, पृथिवी तथा वेदवाणी भी होता है। इसी प्रकार मन्त्र में प्रयुक्त कुछ अन्य शब्दों के अर्थ निम्न प्रकार हैं। विष्णु = सूर्य, यज्ञ, सर्वव्यापक परमात्मा। पूषा = पृथिवी। भवित्रम् भुवनं अन्तरिक्षं उदकं वा (सायण)

५९. शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो विभातीः।

शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः क्षेत्रस्य पतिरस्तु शंभुः॥

ऋग्. ७। ३५। १०

(त्रायमाणः सविता देवः नः शं) रक्षा करने वाले सविता देव हमारे लिये सुखकारी हों, [शं नः भवन्तु उषसः विभातीः] तेजस्वी प्रकाशमान उषायें हमारे लिये सुखकारी हों, [शं नः पर्जन्यः भवतु प्रजाभ्यः] मेघ हमारी प्रजाओं के लिये, हमारी सन्तानों के लिये अथवा हम प्रजाजनों के लिये सुखकारी हों, [क्षेत्रस्य पतिः नः शंभुः अस्तु] पृथिवी का स्वामी अग्नि अथवा द्युलोक या सूर्य हमारे लिये कल्याण तथा सुख उत्पन्न करने वाला हो।

इयं वै क्षेत्र पृथिवी। गो. ब्रा. उ. ५। १०

यह पृथिवी ही क्षेत्र है।

६०. शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह धीभिरस्तु ।

शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः पार्थिवाः

शं नो अप्याः ।।

अथर्व. १९ । ११ । २ ऋग्. ७ । ३५ । ११

(देवाः) हमें ज्ञान, प्रकाश तथा अन्य मूल्यवान पदार्थ देने वाले (विश्वे देवाः) समस्त देव तथा विद्वान् (नः शम् भवन्तु) हमारे लिये सुखकारी हों (सरस्वती सह धीभिः शं अस्तु) सरस्वती बुद्धि एवं बुद्धिसत्ता पूर्ण कर्मों के साथ हमारे लिये कल्याण कारी हो, (अभिषाचः शम्) हमसे आत्मिक प्रेम करने वाले तथा यज्ञ की सेवा करने वाले हमारे लिये सुखकारी हों (रातिषाचः शं उ) तथा दान देने वाले हमारे लिये सुखकारी हों (शं नः दिव्याः पार्थिवाः) दिव्य गुणों तथा शक्तियों से युक्त देव तथा विद्वान् अथवा दिव्य शक्तियां तथा पृथिवी से संबंधित प्राणी, पदार्थ एवं शक्तियां हमारे लिये सुख एवं शान्ति प्रदान करने वाली हों (शं नः अप्याः) अन्तरिक्ष एवं जल से सम्बन्धित प्राणी, पदार्थ एवं शक्तियां हमारे लिये सुखकारी हों ।

६१. शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः।

शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु।।

अथर्व. १९ । ११ । १ ऋग्. ७ । ३५ । १२

(सत्यस्य पतयः नः शम् भवन्तु) सत्य का पालन करने वाले श्रेष्ठ जन हमारे लिये सुखकारी हों, (शं नः अर्वन्तः) अश्व हमारे लिये सुखकारी हों, (शम् उ सन्तु गावः) तथा गौवें हमारे लिये सुखकारी हों। (सुकृतः सुहस्ताः ऋभवः नः शम्)सत्कर्म करने वाले तथा सुन्दर हाथों वाले अर्थात् जिनके हाथ श्रेष्ठ कर्म ही करते हैं, ऐसे मेधावी जन हमारे लिये सुखकारी हों, (शं नः भवन्तु पितरः हवेषु) तथा हवन, यज्ञ आदि पवित्र कार्यों में पिता, पितामह आदि वृद्ध जन हमें शान्ति एवं सुख देने वाले हों।

ऋभुः मेधाविनाम्—निघण्टु । ३ । १५ ।

६२. शं नो अज एकपाद् देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्य१ः शं समुद्रः।

शं नो अपां नपात् पेरुरस्तु शं नः पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥

अथर्व. १९ । ११ । ३ ऋग्. ७ । ३५ । १३

(अजः एकपात् देवः नः शं अस्तु) दिव्य गुणों वाला प्रभातकालीन सूर्य हमारे लिये सुखकारी हो,(अहिर्बुध्न्यः नः शम्)अन्तरिक्ष स्थानीय मेघ हमारे लिये सुखकारी हो, (शं समुद्रः) समुद्र हमारे लिये सुखकारी हो, (अपां नपात् पेरुः नः शम् अस्तु) जल जिसके पुत्र हैं, ऐसी मेघस्थ विद्युत हमारा पालन करने वाली तथा सुखकारी हो, [शं नः पृश्निः भवतु देवगोपा] देव जिसकी रक्षा करते हैं, ऐसी विविध रूपों वाली पृथिवी हमारे लिये सुखकारी हो।

बुध्नमन्तरिक्षम् निरुक्त १० । ४४ इयं पृथिवी वै पृश्निः । तै ब्रा. १ । ४ । १ । ५ यह पृथिवी ही पृश्नि है। बादलों में जब बिजली चमकती है, तब पानी बरसता है, अतएव अलंकारिक रूप से जलों को मेघस्थ विद्युत का पुत्र कहा गया है।

तं सूर्यं देवमजमेकपादम् । तै. ब्रा. ३ । १ । २ । ८ वह सूर्य देव अज एकपात् है ।

६३. शं नो ग्रहाश्चान्द्रमसाः शमादित्यश्च राहुणा ।

शं नो मृत्युर्धूमकेतुः शं रुद्रास्तिग्मतेजसः ।।

अथर्व. १६ । ६ । १०

(शं नः ग्रहाः चान्द्रमसाः) चन्द्रमा तथा चन्द्रमा से संबधित ग्रह हमारे लिये शान्ति दायक हों (च आदित्यः राहुणा शं) तथा राहु के साथ आदित्य हमारे लिये शान्ति दायक हो । (शं नः मृत्युः धूमकेतुः] मृत्यु के समान दुःखदायी धूम केतु अथवा केतु हमारे लिये शान्ति दायक अथवा हानि रहित हो (शं रुद्राः तिग्मतेजसः] तीक्ष्ण तेज अथवा उग्र स्वभाव वाले रुद्रगण अथवा एकादश रुद्र हमारे लिये शान्ति दायक हों । फलित ज्योतिष के अनुसार निम्नाङ्कित ग्रह मनुष्य जीवन पर विशेष प्रभाव डालते हैं, (रवि) सूर्य (सोम) चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु तथा केतु । दश प्राण तथा जीवात्मा, ये एकादश रुद्र मनुष्य शरीर में निवास करते हैं ।

६४. शं रुद्राः शं वसवः शमादित्याः शमग्नयः ।

शं नो महर्षयो देवाः शं देवाः शं बृहस्पतिः ।।

अथर्व. १९ । ९ । ११

(शं रुद्राः शं वसवः)एकादश रुद्र तथा अष्ट वसु हमारे लिये शान्ति दायक हों,(शम् आदित्याः शम् अग्नयः)द्वादश आदित्य हमारे लिये शान्ति दायक हों, अग्नियाँ हमारे लिये शान्ति दायक हों, (शम् नः महर्षयः देवाः) मन्त्रदृष्टा महान् ऋषि रूपी देव हमारे लिये शान्ति दायक हों, (शम् देवाः शं बृहस्पतिः) समस्त देव हमारे लिये शान्ति दायक हों, महती वेद वाणी के प्रणेता एवं रक्षक तथा महान ब्रह्माण्ड के स्वामी परम पिता परमेश्वर हमें शान्ति प्रदान करें। ब्रह्म वै बृहस्पतिः। ब्रह्म ही बृहस्पति है। (ऐतरेय। १। ४। २१)

रुद्र—दश प्राण तथा जीवात्मा, ये ११ रुद्र होते हैं क्योंकि शरीर से बाहर जाते समय ये प्रिय जनों को रुलाते हैं। ३६ वर्ष आयु तक के वेदज्ञ ब्रह्मचारी भी रुद्र कहलाते हैं।
दश प्राण ये हैं, प्रमुख—प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान।
तथा गौण—नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त तथा धनञ्जय।

वसु—वसु का अर्थ है बसाने वाला अर्थात् जिस पर हमारा जीवन आधारित है। ८ वसु ये हैं—अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, द्यौ, सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्र। २४ वर्ष तक की आयु के ब्रह्मचारी भी वसु कहलाते हैं।

आदित्य—संवत्सर के बारह मास आदित्य कहलाते हैं क्योंकि ये सभी की आयु लेते हुये, कम करते हुये चलते जाते हैं। ४८ वर्ष तक की आयु के ब्रह्मचारी भी आदित्य कहे जाते हैं। ८ वसु, ११ रुद्र तथा १२ आदित्य, ये मिलकर ३१ हुये। इनमें इन्द्र अर्थात् विद्युत तथा प्रजापति को मिलाकर कुल ३३ (तेंतिस) देवता होते हैं। सदाचारी वेदज्ञ विद्वानों को भी देवता कहा जाता है,

यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि वैदिक वाङ्मय में अग्नि, इन्द्र, प्रजापति, आदित्य, चन्द्रमा, वायु, शुक्र, आप:, रुद्र, वसु आदि शब्द ब्रह्म के भी वाचक हैं। वास्तव में ये सभी देवता परमात्मा के ही अंश हैं, ब्रह्म के विराट स्वरूप के अङ्ग हैं। यजुर्वेद १४ । २० में उल्लिखित देवताओं में उपरिलिखित देवताओं के साथ बृहस्पति, मरुत, विश्वेदेवा तथा वरुण भी सम्मिलित हैं।

इन सभी देवताओं के अंश मनुष्य शरीर, जो कि वास्तव में ब्रह्म के विराट शरीर का वामन अवतार है, लघु रूप है, में भी स्थित रहते हैं। इन्हीं देवताओं के अंशों से प्राणि मात्र के शरीरों का निर्माण होता है।

६५. स नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते ।

शं राजन्नोषधीभ्यः ॥

साम उत्त. १ । ३ क्र. सं. ६५३ ऋग्. ९ । ११ । ३

(राजन) हे प्रभो ! (स नः पवस्व) वह आप हमें पवित्र कीजिये (शं गवे शं जनाय शम् अर्वते) हमारी गौवों के लिये, हमारे पुत्र, मित्र आदि जनों के लिये तथा हमारे अश्वों के लिये शान्ति एवं सुख हो। (शं ओषधीभ्यः) हमारी ओषधियों के लिये, हमारे अन्न के लिये कल्याण कारी होइये अर्थात् अन्न की हमारी फसलें उत्तम हों तथा उनसे हमें पौष्टिक अन्न प्राप्त हो। गेहूं, जौ, चना, चावल आदि सभी ओषधियां हैं। यहां 'गौ' का अर्थ ज्ञानेन्द्रियां तथा 'अर्व' का अर्थ कर्मेन्द्रियां भी हो सकता है।

६६. या ते रुद्र शिवा तनूरघोराऽपापकाशिनी ।

तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभि चाकशीहि ।।

यजु. १६ । २

(गिरिशन्त रुद्र) पर्वत पर वास करने वाले तथा सुख का विस्तार करने वाले अर्थात् सब को सुख देने वाले हे रुद्र ! (या ते शिवा अघोरा अपापकाशिनी तनूः) आपका जो मङ्गलमय, अक्रूर, सौम्य तथा पापों का नाश करने वाला दिव्य स्वरूप है, (तया शन्तमया तन्वा नः अभिचाकशीहि) उस अत्यन्त सुखमय शरीर से, अपने सुखस्वरूप से हमें देखिये अर्थात् हमें अपनी सुख देने वाली कृपा दृष्टि से ही देखिये ।

६७. या ते रुद्र शिवा तनू शिवा विश्वाहा भेषजी ।

शिवा रुतस्य भेषजी तया नो मृड जीवसे ।।

यजु. १६ । ४९

(रुद्र) हे रुद्र ! (विश्वाहा शिवा भेषजी) संसार के दुखों को सर्वथा दूर करने वाली कल्याण कारी ओषधि के समान (या ते शिवा तनूः) जो आपका कल्याण कारी दिव्य स्वरूप है तथा [रुतस्य शिवा भेषजी] शरीर की व्याधियों को दूर करने वाली आपकी कृपा रूपी जो कल्याण कारी ओषधि है, [तया नः मृड जीवसे] उससे आप हमें जीवित रहने के लिये सुखी कीजिये अर्थात् हमारे जीवन को सुखमय बनाइये जिससे हम भली प्रकार जीवित रह सकें ।

परमात्मा, यज्ञ, अग्नि एवं सरस्वती
की
स्तुति तथा प्रार्थना

६८. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।

ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।।

ऋग्. १० । ९० । १६ — यजु. ३१ । १६
ऋग्. १ । १६४ । ५० — अथर्व. ७ । ५ । १

(देवाः) देवों ने, विद्वानों ने (यज्ञेन) यज्ञ के द्वारा (यज्ञम्) उस पूजनीय परमात्मा का (अयजन्त) यजन किया, पूजन किया (तानि धर्माणि प्रथमानि आसन्) वे विविध प्रकार के यज्ञ रूपी धार्मिक कार्य सर्व प्रथम अर्थात् सर्वश्रेष्ठ थे। (ते ह नाकं महिमानः सचन्त) यज्ञ करने वाले वे देव, वे तेजस्वी विद्वान् महिमा मण्डित होकर उस दुःख रहित स्वर्ग अथवा मोक्ष का उपभोग करते है (यत्र पूर्वे साध्याः देवाः सन्ति) जहाँ पूर्व में साधना करने वाले ज्ञानी जन, ऋषिगण निवास करते हैं।

६९. उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये ।

आरे अस्मे च शृण्वते ।।

यजु. ३ । ११ — ऋग्. १ । ७४ । १
साम. उत्तरा. १२ । १ । १; क्रम. सं. १३७९ ।।

(उपप्रयन्तः अध्वरम्) हिंसा रहित यज्ञ के समीप जाते हुये हम (आरे अस्मे च श्रृण्वते) दूर से तथा समीप से अर्थात् प्रत्येक स्थान से हमारी स्तुतियों को सुनने वाले, [अग्नये मन्त्रं वोचेम] परमात्मा के लिये मन्त्रों का पाठ करें, मन्त्रों से उसकी स्तुति करें।

दूर से तथा समीप से कहने का तात्पर्य यह है कि परमात्मा सर्वव्यापक है। वह हमारे निकट से निकट तथा दूर से दूर स्थान में भी सर्वदा स्थित रहता है। "तद् दूरे तद्वन्तिके" यजु. ४०। ५। इसीलिये वह हमारी प्रार्थना प्रत्येक स्थान से सुन सकता है।

यज्ञ का नाम ही अध्वर अर्थात् हिंसा रहित है अतः यह स्पष्ट है कि यज्ञ में हिंसा एवं कुटिलता का कोई स्थान नहीं है।

७०. **कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे ।**

देवममीवचातनम् ।।

ऋग्. १। १२। ७

[कवि] मेधावी, ज्ञानी [सत्यधर्माणं] सत्य को धारण करने वाले, सत्य के रक्षक,तथा सत्य नियमों के प्रवर्तक [अमीवचातनम्] रोगों, हिंसक शत्रुओं तथा अज्ञानादि दोषों का नाश करने वाले [देवं अग्निं] प्रकाशमान अग्नि एवं प्रकाशस्वरूप परब्रह्म की [अध्वरे] यज्ञ में [उप स्तुहि] समीप बैठकर स्तुति करो।

७१. अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम् ।

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम् ॥

साम. उत्त. ३ । २ । १ क्रम. सं. ७९० ॥ ऋग्. १ । १२ । १ ॥
अथर्व. २० । १०१ । १

अधियज्ञ अर्थ

(होतारं) देवों का आह्वान करने वाले, उन्हें बुलाने वाले, (विश्व वेदसम्, जातवेदसम्) समस्त उत्पन्न पदार्थों को जानने वाले अथवा समस्त धनों के स्वामी तथा (अस्य यज्ञस्य सुक्रतुं) इस यज्ञ को उत्तम ढंग से पूर्ण करवाने वाले एवं समस्त अनर्थों का निवारण करने वाले (अग्निं दूतं वृणीमहे) अग्निरूपी दूत का हम वरण करते हैं, स्तुति करते हैं।

आध्यात्मिक अर्थ

(होतारम्) हमें सब कुछ देने वाले (विश्ववेदसम्) सर्वज्ञ (दूतम्) समस्त अनर्थों का नाश करने वाले तथा ज्ञान देने वाले, (अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम) एवं इस यज्ञ को उत्तमता से पूर्ण करवाने वाले (अग्निं वृणीमहे) प्रकाशस्वरूप परब्रह्म का हम वरण करते हैं, स्तुति करते हैं।

दूत = सन्देश वाहक,ज्ञान प्रापक,अनर्थ निवारक(निरुक्त ५ । १ । ३)

जातवेदसम्

अग्नि समस्त उत्पन्न पदार्थों में व्याप्त होने के कारण उन्हें जानने वाला है। अथवा, प्रकाश देने वाला होने के कारण समस्त पदार्थों का ज्ञान देने वाला है।

सामवेद के भाष्य में सायणाचार्य ने लिखा है–विश्ववेदसं विश्वानि वेत्तीति विश्ववेदाः तम् यद्वा वेद इतिधननाम विश्वं सर्वं वेदो धनं यस्य तम् । इस प्रकार विश्ववेदसं का अर्थ है, जो सब कुछ जानता हो अथवा जिसके पास समस्त धन हो ।

७२. अद्या दूतं वृणीमहे वसुमग्निं पुरुप्रियम् ।

धूमकेतुं भाऋजीकं व्युष्टिषु यज्ञानामध्वरश्रियम् ।।

ऋग्. १ । ४४ । ३

(अद्या दूतं वसुम्) आज हम देवताओं को यज्ञ में बुलाने वाले अथवा यज्ञ में आहुत द्रव्य देवताओं को पहुँचाने वाले, सब को बसाने वाले, जीवित रखने वाले, (पुरुप्रियम्) सबको अथवा बहुतों को प्रिय (धूमकेतुं भाऋजीकं) धूम्र रूपी ध्वजा वाले कान्तिमान तथा प्रकाश देने वाले, (व्युष्टिषु यज्ञानां अध्वर श्रियम्) तथा उषा काल में यज्ञ करने वालों के हिंसा रहित यज्ञों में शोभायमान होने वाले अथवा हिंसा रहित यज्ञों के शोभा रूप (अग्निं वृणीमहे) अग्नि का हम वरण करते है, पूजन करते हैं ।

७३. त्वां दूतमग्ने अमृतं युगेयुगे हव्यवाहं दधिरे पायुमीड्यम् ।

देवासश्च मर्तासश्च जागृविं विभुं विश्पतिं नमसा नि षेदिरे ।।

साम. उत्त. १५ । ४ । २ ऋग्. ६ । १५ । ८

क्र. सं. १५६८

(अमृतं युगे युगे हव्यवाहं) अविनाशी, तथा युग युग में अर्थात् सदैव हव्य का वहन करने वाले,(पायुं ईड्यं) रक्षा करने वाले, तथा स्तुति के योग्य (अग्ने)हे अग्ने! (देवासः च मर्तासः च)देवों तथा मनुष्यों ने (त्वां दूतं दधिरे)आपको देवों को बुलाने के लिये दूत के रूप में धारण किया है, स्वीकार किया है। (यज्ञाग्नि में आहुत द्रव्यों को अग्नि ही समस्त देवों तक पहुँचाता है। इसी प्रकार शरीर में भोजन किये गये समस्त पदार्थों को जठराग्नि ही पचाने के उपरान्त रक्त एवं प्राण वायु के संचार द्वारा समस्त देवों अर्थात् इन्द्रियों को पहुँचाती है।)

(जागृवि विभुं विश्पतिं) सदैव जागृत रहने वाले, सर्वत्र व्याप्त तथा प्रजाओं का पालन करने वाले हे अग्ने! (नमसा नि षेदिरे) हम आपकी नमन के द्वारा उपासना करते हैं, अथवा हे प्रभो! हम आपको अपने हृदयासन पर विराजमान करते हैं।

यज्ञ परक अर्थ में अग्नि का अर्थ यज्ञाग्नि होता है जब कि आध्यात्मिक अर्थ में अग्नि का अर्थ परमात्मा होता है।

७४. यजिष्ठं त्वा ववृमहे देवं देवत्रा होतारममर्त्यम्।

अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम॥

साम. पूर्वा. क्र. सं. ११२ — ऋग्. ८।१९।३

साम. उत्त. १२।४।१ क्र. सं. १४१३

[देवं देवत्रा] देवों में महान् देव [होतारं अमर्त्यम्] यज्ञ में देवों को बुलाने वाले अथवा हमें सब कुछ दान देने वाले, अविनाशी, [अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम] तथा इस यज्ञ को उत्तमता से सम्पन्न करने वाले, (यजिष्ठं) पूजनीय तथा सर्वश्रेष्ठ हे अग्ने ! अथवा हे प्रभो ! (त्वा ववृमहे) हम आपका वरण करते हैं।

७५. सुजातं जातवेदसमग्निं वैश्वानरं विभुम् ।

हव्यवाहं हवामहे स नो मुञ्चत्वंहसः ।।

अथर्व. ४ । २३ । ४

(सुजात) सुन्दर एवं शोभायमान स्वरूप में प्रकट होने वाले, (जातवेदसम्) संसार में उत्पन्न समस्त पदार्थों में व्याप्त रहने के कारण उन्हें जानने वाले, (वैश्वानरम्) विश्व के समस्त प्राणियों के हितकारी, उन्हें जीवन, प्रेरणा, ऊर्जा एवं गति देने वाले, (विभुम्) सर्वव्यापक (हव्यवाहम्) अन्न आदि समस्त हव्य पदार्थों का वहन करने वाले अथवा यज्ञ में आहुत हवि को विभिन्न देवों के लिये ले जाने वाले (अग्निं) सर्वाग्रणी परमात्मा (तथा यज्ञ के अर्थ में यज्ञाग्नि) का हम (हवामहे) आह्वान करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि (सः नः) वह हमें (अंहसः मुञ्चन्तु) पाप से मुक्त कराये अर्थात् हमें पाप से दूर रखे तथा हमारे पापों को नष्ट करे।

७६. देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे ।

शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमे ऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ।।

ऋग्. १ । ९४ । १३

(अग्ने) हे अग्ने ! (देव: देवानाम्) देवों में श्रेष्ठ देव तथा दिव्य गुणों से युक्त एवं प्रकाशमान आप (अद्भुतः मित्र: असि) अद्भुत मित्र हैं तथा (अध्वरे) यज्ञ में (चारु:) शोभायमान होने वाले आप (वसूनाम् वसु: असि) अष्ट वसुओं में श्रेष्ठ वसु हैं (अग्नि, पृथिवी, वायु, अन्तरिक्ष, आदित्य, द्युलोक, चन्द्रमा तथा नक्षत्र ये आठ वसु हैं, जिनके आधार पर प्राणि मात्र बसते हैं, जीवित रहते हैं।) (तव सप्रथस्तमे) आपके द्वारा प्रदान किये गये सर्वत्र विस्तृत (शर्मन्) सुख में अथवा सुख देने वाले गृह में (वयम् स्याम) हम रहें अर्थात् आपके द्वारा प्रदान किये गये चारों ओर विस्तीर्ण सुख का हम उपभोग करें तथा (तव सख्ये) आपकी मित्रता में रहकर (वयं मा रिषाम) हम किसी प्रकार की हिंसा, दुःख अथवा कष्ट को प्राप्त न हों।

अथवा, (देव: देवानाम् अद्भुतः मित्र: असि) हे प्रकाशमान अग्ने ! आप दिव्य गुण स्वभाव वाले देवों अथवा विद्वानों के अद्भुत मित्र हैं तथा (वसु: वसूनाम् असि) आप समस्त धनों के निवास स्थान हैं, आपकी कृपा एवं सहायता से समस्त धन प्राप्त किये जा सकते हैं।

आध्यात्मिक अर्थ में अग्नि का अर्थ परमात्मा होगा।

७७. पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती ।

यज्ञं वष्टु धियावसुः ।।

यजु. २० । ८४, ऋग्. १ । ३ । १०
साम. पूर्वा. २ । १० । ५ क्र. सं. १८९

(पावका नः सरस्वती) सरस्वती हमें पवित्र करने वाली एवं (वाजेभिः अन्नैः) अन्न आदि से युक्त होने के कारण (वाजिनीवती अन्नवती) अन्नपूर्णा तथा यज्ञ की अधिष्ठात्री है। (धियावसुः कर्मवसुः) बुद्धि तथा ज्ञान पूर्वक किये गये श्रेष्ठ कर्मों से धन देने वाली अथवा बुद्धि एवं ज्ञान ही है धन जिनका, ऐसी सरस्वती (यज्ञं वष्टु यज्ञं वहतु) हमारे यज्ञ का वहन करें, (वश कान्तौ) उसे सुशोभित करें, सफल करें ।

सरस्वती का अर्थ वेदवाणी भी है । धियावसुः धनं यस्याः सा धियावसुः ।

७८. चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।

यज्ञं दधे सरस्वती ।।

यजु. २० । ८५ ऋग्. १ । ३ । ११

[सूनृतानां चोदयित्री] मधुरता पूर्ण सत्यवाणी एवं सत्य कर्मों की प्रेरणा देने वाली [सुमतीनां चेतन्ती] तथा उत्तम बुद्धियों को जाग्रत करने वाली, बढ़ाने वाली सरस्वती [यज्ञं दधे] यज्ञ अर्थात् समस्त श्रेष्ठ कर्मों को धारण करती है ।

७६. मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ

समिमं दधातु । विश्वे देवास इह मादयन्तामो३ म्प्रतिष्ठ ।।

यजु. २ । १३

(जूतिः मनः आज्यस्य जुषतां) मेरा वेगवान मन घृत अर्थात् यज्ञ का सेवन करे, यज्ञ में रमण करके यज्ञ से सुख का अनुभव करे तथा यज्ञमय जीवन व्यतीत करने का संकल्प ले। घृत यहाँ यज्ञ का प्रतीक है क्योंकि घृत से ही यज्ञ सम्पन्न होता है। घृत तेजस्विता का भी प्रतीक है अतः घृत के सेवन का यह भी अर्थ है कि हमारा मन तेजस्वी होना चाहिये, निराशा एवं हतोत्साह के कारण मरा हुआ नहीं। (बृहस्पतिः इमं यज्ञं तनोतु) सूर्य, चन्द्र, अग्नि, आकाश आदि महान देवताओं का स्वामी एवं रक्षक परम पिता परमात्मा इस यज्ञ का विस्तार करें (इमं अरिष्टं यज्ञं सं दधातु) तथा इस हिंसा रहित एवं कभी नष्ट न होने वाले तथा कभी न छोड़े जाने योग्य यज्ञ को सम्यक् रूप से धारण करें अर्थात् इसकी रक्षा करें और सभी को यज्ञ करने की प्रेरणा दें। [विश्वे देवासः इह मादयन्ताम्] समस्त देवगण तथा विद्वान् इस यज्ञ में भाग लेकर आनन्दित हों [ओम्] तथा ओम् अर्थात् परब्रह्म स्वयं (प्रतिष्ठ प्रकर्षेणतिष्ठ) हमारे यज्ञ में हमारे हृदय में, हमारे मन में सु-स्थित हों सु प्रतिष्ठित हों।

इसी भाव को गीता में निम्न प्रकार स्पष्ट किया गया है।

८०. कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भवम् ।
तस्मात्सर्वगतं ब्रह्म नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम् ।।

गीता. ३ । १५

[कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि] कर्म को वेद से उत्पन्न हुआ जानो, [ब्रह्माक्षर समुद्भवं] वेद अविनाशी परमात्मा से उत्पन्न हुये हैं, [तस्मात्] इसलिये [सर्वगतं ब्रह्म] सर्वव्यापक परब्रह्म [नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्] यज्ञ में सदा प्रतिष्ठित रहते हैं, उपस्थित रहते है। वास्तव में ब्रह्म ही यज्ञ है।

आचमन—सभी यज्ञ करने वालों को हथेली में शुद्ध जल लेकर निम्नाङ्कित मन्त्रों से एक एक करके तीन आचमन करना चाहिये।

८१. शं नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये।

शं योरभि स्रवन्तु नः।।

ऋग्. १०।९।४ यजु. ३६।१२

अथर्व. १।६।१ साम. पूर्वा. १।३।१३ क्र. सं. ३३

इससे प्रथम आचमन।

(देवी आपः) दिव्य गुणों से युक्त जल (पीतये नः अभिष्टये) पीने के लिये तथा हमारे अभीष्ट कार्यों की सिद्धि के लिये (शं भवन्तु) सुखकारी हों, शान्तिदायक हों (शं योः अभिस्रवन्तु नः) तथा रोग एवं भय आदि का शमन करके हमारे ऊपर चारों ओर से सुख की वर्षा करें।

८२. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन ।

महे रणाय चक्षसे ।।

यजु. ३६ । १४ ऋग्. १० । ९ । १

इससे दूसरा आचमन ।

(आप:) हे जल ! (हि) क्योंकि आप (मय: भुव: आस्थ) सुख उत्पन्न करने वाले हैं, (ता:)अत: (महे महते रणाय रमणीयाय चक्षसे दर्शनाय सम्यग्ज्ञानाय) महान् अथवा श्रेष्ठ रमणीय ज्ञान प्राप्त करने के लिये आप (न: ऊर्जे दधातन) हमें अन्न तथा रस उपलब्ध करायें ।

हम केवल जल से प्राप्त होने वाले अन्न एवं रस के उपभोग तक ही सीमित न रहें अपितु उसे प्राप्त करने के पश्चात श्रेष्ठ एवं आनन्दमय जीवन दर्शन तथा आत्म ज्ञान प्राप्त करें ।

८३. यो व: शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह न: ।

उशतीरिव मातर: ।।

यजु. ३६ । १५ ऋग्. १० । ९ । २

इससे तीसरा आचमन ।

हे जल ! (उशती: इव मातर:) जिस प्रकार बच्चे को दूध पिलाने की इच्छा करती हुयी मातायें अपने बच्चे को दूध पिलाती हैं, उसी प्रकार (व: य: शिवतम: रस:) आपका जो कल्याण कारी रस है, (तस्य इह न: भाजयते) उसका यहाँ हमें सेवन कराइये ।

अङ्ग स्पर्श

तत्पश्चात् स्वस्थ जीवन के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण निम्नाङ्कित प्रार्थनाओं के साथ बायें हाथ में जल लेकर, उस जल से दाहिने हाथ से अङ्ग स्पर्श करना चाहिये।

ओ३म् वाङ्म आस्येऽस्तु। इस मन्त्र से मुख।

ओ३म् नसोर्मे प्राणोऽस्तु। इससे नासिका के दोनों छिद्र।

ओ३म् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु। इससे दोनों आँखें।

ओ३म् कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु। इससे दोनों कान।

ओ३म् बाह्वोर्मे बलमस्तु। इससे दोनों बाहु।

ओ३म् ऊर्वोर्मे ओजो ऽस्तु। इससे दोनों जङ्घायें।

ओ३म् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु। इस मन्त्र से दाहिने हाथ से जल स्पर्श करके समस्त शरीर पर छिड़क लें।

पारस्कर गृह्य. १।३।२५

समिधा चयन—तदनन्तर निम्नाङ्कित मन्त्रों के साथ वेदी में समिधा चयन करें। प्रत्येक मन्त्र के साथ चार-चार समिधायें सीधी चौकोर रखें।

८४. अग्ने समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे।

स मे श्रद्धां च मेधां च जातवेदाः प्र यच्छतु॥

अथर्व. १९।६४।१

(अग्ने) हे अग्ने! (बृहते जातवेदसे) महान् जातवेद अग्नि के लिए (समिधं आहार्षं) समिधा लाया हूँ। (सः जातवेदाः) वह जातवेद (मे श्रद्धां च मेधां च प्रयच्छतु) मुझे श्रद्धा और मेधा प्रचुर मात्रा में दे।

८५. इध्मेन त्वा जातवेदः समिधा वर्धयामसि ।

तथा त्वमस्मान्वर्धय प्रजया च धनेन च ।।

अथर्व. १९ । ६४ । २

(जातवेदः)हे जातवेद अग्ने ! जिस प्रकार(इध्मेन समिधा त्वा वर्धयामसि)प्रज्ज्वलन शील काष्ठ की समिधा से मैं आपको बढ़ाता हूँ, (तथा त्वम् अस्मान्) वैसे ही आप हमें (प्रजया च धनेन च वर्धय) प्रजा अर्थात् सन्तान और धन से समृद्ध करें ।

८६. यदग्ने यानि कानि चिदा ते दारूणि दध्मसि ।।

सर्वं तदस्तु मे शिवं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ।।

अथर्व. १९ । ६४ । ३

(अग्ने) हे अग्नि ! (यानि कानि चिद्) जो कोई (दारूणि) समिधायें (ते आ दध्मसि) तेरे लिये लाकर हम अर्पण करते हैं, (यविष्ठ्य तत् जुषस्व) हे बलवान तरुण अग्नि ! उनका तू सेवन कर, (तत् सर्वं मे शिवं अस्तु)तथा वह सब मेरे लिये कल्याणकारी हों ।

८७. एतास्ते अग्ने समिधस्त्वमिद्धः समिद्भव ।

आयुरस्मासु धेह्यमृतत्वमाचार्याय ।।

अथर्व. १९ । ६४ । ४

(अग्ने)हे अग्ने ! [एताः ते समिधः] ये समिधायें तेरे लिये हैं, [त्वं इद्धः समित् भव] तू प्रदीप्त होकर तेजस्वी हो। [अस्मासु आयुः धेहि] हम विद्यार्थियों के लिये आयुष्य दे तथा [आचार्याय अमृतत्वम्] हमारे आचार्य के लिये अमृतत्व दे।

अग्न्याधान—'ओ३म् भूर्भुवः स्वः' का उच्चारण करके [गोभिल गृह्य। १। १। ११] किसी पत्ते पर अथवा मिट्टी के छोटे से दिये में कपूर अथवा घृत में भीगी हुयी रुयी रखकर उसे घृत के दीपक अथवा दीपशलाका से जला दें तथा निम्नाङ्कित मन्त्र के साथ पतली पतली समिधाओं के मध्य में अग्न्याधान करें।

८८. भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा।

तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥

यजु. ३। ५

(द्यौः इव भूम्ना) द्युलोक के समान महान् ऐश्वर्य से युक्त होने के लिये तथा (पृथिवी इव वरिम्णा) धन धान्य से पूर्ण सब को आश्रय एवं भोजन देने वाली विस्तृत पृथिवी के समान गुणों से युक्त होने के लिये [देवयजनि] देवों की यज्ञ स्थली रूपी अथवा जहाँ देवों का यजन किया जाता है, ऐसी (पृथिवि) हे पृथिवी ! मैं (तस्याः ते पृष्ठे) उस तेरे पृष्ठ भाग पर (भूः भुवः स्वः अन्नादम् अग्निम् अन्नाद्याय आदधे) भूः भुवः स्वः इन तीन महाव्याहृतियों के साथ अन्न का भक्षण करने वाली अग्नि को, अन्न रूपी हवि खाने के लिये स्थापित करता हूँ।

यहाँ अग्नि के लिये प्रयुक्त विशेषण 'अन्नादम्' अत्यन्त महत्व पूर्ण है। यज्ञ के लिये स्थापित की जाने वाली पवित्र आहवनीय अग्नि, आहुति के रूप में दिये गये केवल अन्न का ही भक्षण करती है, मांस, मज्जा आदि निकृष्ट पदार्थों का नहीं। यही इस बात का सबसे बड़ा प्रमाण है कि यज्ञ में पशुवध करके मांस, मज्जा आदि की आहुति देना अत्यन्त निकृष्ट एवं वेद विरुद्ध कार्य है।

भूर्भुवः स्वः के उच्चारण के साथ यज्ञाग्नि स्थापित करने का भी विशेष महत्व है क्योंकि ये महाव्याहृतियाँ ब्रह्म के सच्चिदानन्द स्वरूप (भूः = सत, भुवः = चित्, स्वः = आनन्द), के साथ साथ, सम्पूर्ण वेद वाणी तथा तीनो लोकों अर्थात् समस्त प्राणिमात्र का प्रतिनिधित्व करती हैं और यह इंगित करती हैं कि यज्ञ समस्त विश्व के कल्याण के लिये किया जाता है, केवल संकुचित स्वार्थ की पूर्ति के लिये नहीं।

अग्न्याधान के पश्चात् अग्नि के ऊपर घृत में डुबोई हुयी पतली पतली समिधायें रखकर उसे निम्नाङ्कित मन्त्र से प्रदीप्त करें।

८६. उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि
त्वमिष्टापूर्ते सꣳसृजेथामयं च।
अस्मिन्त्सधस्थे अध्युत्तरस्मिन्
विश्वे देवा यजमानश्च सीदत ।।

यजु. १५ । ५४

(अग्ने) हे अग्ने ! (त्वम् उद्बुध्यस्व) तुम प्रबुद्ध हो, प्रदीप्त हो, (प्रति जागृहि) तथा जागृत हो (अयम् च इष्टा पूर्त्ते सं सृजेथाम्) तथा इस यजमान के यज्ञ, दान, ईश्वराधना, सत्संगति आदि सुखदायक इष्ट कार्य एवं पूर्त्त अर्थात् कूप तथा तड़ाग आदि के निर्माण जैसे परोपकारी एवं सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने वाले कार्यों का सम्यक् रूप से निष्पादन करवाओ। (अस्मिन् सधस्थे) साथ साथ बैठने के इस यज्ञ स्थान में तथा (उत्तरस्मिन्) सर्वोत्कृष्ट स्वर्ग लोक में (विश्वेदेवाः यजमानः च अधि सीदत) समस्त देव तथा यजमान भली प्रकार सुख पूर्वक बैठें।

तात्पर्य यह है कि न केवल इस यज्ञ स्थान में प्रत्युत यज्ञ के पुण्य फल से, स्वर्ग लोक में भी यजमान देवों के साथ बैठने का अधिकारी बने।

द्यौर्वा उत्तरम् सधस्थम्। शतपथ. ८। ६। ३। २३। द्युलोक अथवा स्वर्ग ही उत्तर सधस्थ है, साथ साथ बैठने का उत्कृष्ट स्थान है।

जब अग्नि तीव्र होकर समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन, आम, पलाश, पीपल आदि की आठ आठ अंगुल लम्बी तीन समिधायें घृत में डुबोकर तीनों लोकों के प्रतीक के रूप में निम्नाङ्कित मन्त्रों से एक एक करके अग्नि को समर्पित करें। प्रत्येक आहुति देने वाले के लिये ऐसी तीन तीन समिधायें रखना उचित होगा।

६०. समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।

आस्मिन्हव्या जुहोतन (स्वाहा)। इदमग्नये--इदन्न मम॥

ऋग्. ८। ४४। १ यजु. ३। १, १२। ३०

इससे प्रथम समिधा।

(समिधा अग्निं दुवस्यत) समिधा से अग्नि की सेवा करो, इसे समिधा अर्पण करके नमस्कार करो, (घृतैः बोधयत अतिथिम्) अतिथि के समान आदरणीय इस अग्नि को घृत के द्वारा तीव्र करो, जागृत करो (अस्मिन् हव्या आ जुहोतन) तथा इसमें हव्य पदार्थों का भली प्रकार हवन करो, उनकी आहुति दो।

६१. सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन।

अग्नये जातवेदसे (स्वाहा)॥ इदमग्नये जातवेदसे--

इदं न मम।

ऋग् ५।५।१ यजु. ३।२

इससे दूसरी समिधा

(सु समिद्धाय) उत्तम रूप से प्रदीप्त (शोचिषे) पवित्र करने वाले तेजस्वी (अग्नये जातवेदसे) समस्त उत्पन्न पदार्थों में अन्तर्निहित होने के कारण उन्हें जानने वाले, ज्ञानी अग्नि के लिये (तीव्रं घृतं जुहोतन) तेजस्विता तथा तीव्रता देने वाले घृत का हवन करो।

६२. तं त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्धयामसि।

बृहच्छोचा यविष्ठ्य (स्वाहा)॥ इदमग्नये ऽङ्गिरसे--

इदं न मम।

ऋग् ६।१६।११ यजु. ३।३
साम उत्त. क्र. सं. ६६१

इससे तीसरी समिधा

(अङ्गिरः) हे अग्नि ! (तं त्वा समिद्भिः घृतेन वर्धयामसि) उस तुमको हम समिधाओं तथा घृत से बढ़ाते हैं, प्रदीप्त करते हैं। [यविष्ठ्य] सदा युवा रहने वाले बलवान अग्नि ! [बृहत् आ शोच] तुम महान् तेज एवं प्रकाश के साथ प्रज्वलित हो।

अग्नि ही प्राणाग्नि के रूप में समस्त अंगों में व्याप्त रहती है तथा उन्हें जीवित एवं पुष्ट रखती है अतः प्राण एवं अग्नि दोनों को अङ्गिरस कहा जाता है। अङ्गिरा उ ह्यग्निः- शतपथ १।४।१।२५

तत्पश्चात् निम्नाङ्कित मन्त्र का पाठ करें। [कात्यायन श्रौत सू. ४।८।६]

६३. उप त्वाग्ने हविष्मतीर्घृताचीर्यन्तु हर्यत।

जुषस्व समिधो मम॥

यजु. ३।४

[अग्ने] हे अग्ने ! [हविष्मतीः] श्रेष्ठ हवि से युक्त तथा [घृताचीः] घृत से परिपूर्ण आहुतियां [त्वा उपयन्तु] तुम्हें प्राप्त हों। [हर्यत] हे कान्ति युक्त तथा कमनीय अग्ने ! [मम समिधः जुषस्व] मेरे द्वारा अर्पित की गयी समिधाओं का सेवन करो।

जल प्रोक्षण—

अञ्जलि में जल लेकर वेदी के चारों ओर निम्नाङ्कित मन्त्रों से जल छिड़कें—

ओम् अदिते ऽनुमन्यस्व—इससे पूर्व की ओर।

ओम् अनुमते ऽनुमन्यस्व—इससे पश्चिम की ओर।

ओम् सरस्वत्य ऽनुमन्यस्व—इससे उत्तर की ओर।

गोभिल गृ. १।३।१–३

६४. देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।

दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं

नः स्वदतु ॥

यजु. ६ । १; ११ । ७; ३० । १

इससे दक्षिण से प्रारम्भ करके वेदी के चारों ओर ।

[सवितः देव]समस्त ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाले हे परब्रह्म ! [सविता वै देवानां प्रसविता—शतपथ ब्रा. १ । १ । २ । १७ । सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु आदि समस्त देवताओं को उत्पन्न करने वाला परमात्मा सविता है । अतः यहाँ सविता का अर्थ सूर्य नहीं है] [भगाय]ऐश्वर्य के लिये[यज्ञं प्रसुव]यज्ञ की, श्रेष्ठ कर्म की प्रेरणा कीजिये, तथा [यज्ञपतिं प्रसुव] यज्ञ का, श्रेष्ठ कर्म का संरक्षण करने वाले को प्रेरणा दीजिये [दिव्यः] दिव्य गुणों एवं शक्तियों से युक्त [गन्धर्वः] पृथिवी को धारण करने वाला [केतपूः] तथा ज्ञान से सब को पवित्र करने वाला परमात्मा [नः केतं] हमारे ज्ञान एवं शरीर को [पुनातु] पवित्र करे [वाचस्पतिः] तथा वाणी का स्वामी एवं रक्षक[नः वाचं]हम सबकी वाणी को(स्वदतु स्वादयतु) स्वादयुक्त अर्थात् मधुर बनाये । मानव जीवन की उन्नति के लिये ये सद्गुण आवश्यक हैं ।

आधाराहुतियाँ—निम्नाङ्कित मन्त्रों से घृत की दो आहुतियाँ यज्ञ कुण्ड के उत्तरी एवं दक्षिणी भाग में देनी चाहिये।

ओम् अग्नये स्वाहा। इदमग्नये--इदन्न मम॥

इससे वेदी के उत्तर भाग में।

ओम् सोमाय स्वाहा। इदं सोमाय--इदन्न मम॥

इससे वेदी के दक्षिणी भाग में प्रज्वलित अग्नि पर।

यजु. १० । ५, -२ । ६, २७
(गो. गृह्य सूत्र १ । ८ । ३, ४)

इस विषय में निर्देश है—

ऋजुमाधारयति दीर्घमाधारयति सन्ततमाधारयति। आधारा-आहुतियाँ सीधी, स्थूल एवं न टूटने वाली धार में पश्चिम से पूर्व की ओर दी जानी चाहिये। इस प्रकार प्रथम आधार आहुति वेदी के उत्तरी भाग में पश्चिम से पूर्व की ओर सीधी धारा में दी जानी चाहिये तथा द्वितीय आधार आहुति वेदी के दक्षिणी भाग में पश्चिम से पूर्व की ओर दी जानी चाहिये।

प्रमाण—उतरार्धपूर्वार्धेऽग्नये जुहोति दक्षिणार्धपूर्वार्धे सोमाय। (आप श्रौत सू. २ । १८ । ५—६ । ऐसा ही निर्देश गोभिल गृह्य सूत्र १ । ८ । ५ में भी है।

आज्यभागाहुतियाँ—निम्नाङ्कित दो मन्त्रों से घृत की दो आहुतियाँ वेदी के मध्य भाग में दी जानी चाहिये।

ओम् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये--इदन्न मम॥

यजु. २२ । ३२

ओम् इन्द्राय स्वाहा। इदमिन्द्राय--इदं न मम॥

यजु. २२ । ६, २७

तत्पश्चात् दैनिक अग्निहोत्र के निम्नाङ्कित मन्त्रों से आहुतियाँ दें।

प्रातःकालीन अग्निहोत्र अथवा देव यज्ञ के मन्त्र।

६५. ओम् सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा।

ओम् सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥

ओम् ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा ॥

यजु. ३ । ९

(सूर्यः ज्योतिः) सूर्य ज्योति है, प्रकाश है, तथा (ज्योतिः सूर्यः) प्रकाश सूर्य है, ऐसे ज्योतिस्वरूप सूर्य एवं प्रकाश के लिये (स्वाहा) यह आहुति समर्पित है। (सूर्य एवं प्रकाश में ऐसा अनन्य सम्बन्ध है कि सूर्य को प्रकाश कह सकते हैं तथा प्रकाश को सूर्य कह सकते हैं) (सूर्यः वर्चः) सूर्य तेज है, (ज्योतिः वर्चः) सूर्य का प्रकाश तेज है, ऐसे तेजस्वरूप, प्रकाशवान सूर्य के लिये यह आहुति समर्पित है। (सूर्य, प्रकाश एवं तेज में अनन्य सम्बन्ध है क्योंकि सूर्य से प्रकाश एवं तेज दोनों के साथ उत्पन्न होते हैं। इसीलिये सूर्य एवं उसके प्रकाश को तेज कहा गया है)

(ज्योतिः सूर्यः) ज्योति सूर्य है और (सूर्यः ज्योतिः) सूर्य ज्योति है, ऐसे ज्योतिस्वरूप सूर्य के लिये (स्वाहा) यह [illegible]ति मधुर वचनों के साथ समर्पित है। (यह पुनर्वचन सूर्य के महत्त्व [illegible] लिये है)

९६. ओम् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या ।

जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा ॥

यजु. ३ । १०

(सवित्रा देवेन सजूः) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले प्रेरक सविता देव के समान प्राणियों से प्रेम करने वाले तथा उन्हें प्रेरणा देने वाले एवं (इन्द्रवत्या उषसः सजूः) आभा, कान्ति तथा ऐश्वर्य से युक्त उषा के साथ (जुषाणः) प्रीति रखने वाले (सूर्यः वेतु स्वाहा) सूर्य को सुन्दर वचनों के साथ समर्पित यह आहुति प्राप्त हो।

'जुषी प्रीति सेवनयोः' । सजूः समानप्रीतिः । जुषाणः प्रीतियुक्तः ।

सायंकालीन अग्नि होत्र के मन्त्र ।

९७. ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ।

ओम् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥

यजु. ३ । ९

[अग्निः ज्योतिः] अग्नि ज्योति है तथा [ज्योतिः अग्निः] ज्योति अग्नि है [स्वाहा] ऐसे ज्योति स्वरूप अग्नि देव के लिये सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति समर्पित है। [अग्नि तथा ज्योति में ऐसा अनन्य सम्बन्ध है कि अग्नि को ज्योति कह सकते हैं और ज्योति को अग्नि] ।

[अग्निः वर्चः] अग्नि तेज है, [ज्योतिः वर्चः] तथा अग्नि की ज्योति तेज है, [स्वाहा] ऐसे तेजस्वरूप अग्नि देव के लिये यह आहुति समर्पित है।

९८. ओम् सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या ।

जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा ॥

यजु. ३ । १०

[सवित्रा देवेन सजूः] समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले प्रेरक सविता देव के समान प्राणियों से प्रेम करने वाले तथा उन्हें जीवन देने वाले [इन्द्रवत्या रात्र्या सजूः] एवं ऐश्वर्य तथा सौन्दर्य से सम्पन्न रात्रि के साथ [जुषाणः] प्रीति करने वाले [अग्निः वेतु स्वाहा] अग्नि देव को सुन्दर वचनों [illegible] समर्पित यह आहुति प्राप्त हो ।

इन्द्रवत्या का अर्थ इन्द्र अर्थात् विद्युत से संयुक्त भी हो सकता है । सूर्य, विद्युत एवं अग्नि, भगवान की शक्ति से सम्पन्न तीन प्रकार के प्रमुख तेज हैं । इनमें से विद्युत रात्रि एवं दिन दोनों में समान रूप से हमारे पास रहती है किन्तु सूर्य केवल दिन में दिखायी पड़ता है तथा सूर्य के अस्त हो जाने पर रात्रि में केवल विद्युत तथा अग्नि ही हमारे पास रह जाती हैं । इसीलिये रात्रि तथा उषा दोनों को इन्द्रवत्या अथवा विद्युत से संयुक्त कहा गया है । दिन में सूर्य का प्रकाश प्रमुख होने से तथा सौर मण्डल में सूर्य की प्रधानता होने से प्रातःकाल की आहुति सूर्य को दी जाती है । सायंकाल में सूर्य के अस्त हो जाने के कारण सायंकाल की आहुति अग्नि को समर्पित की जाती है ।

महाव्याहृति आहुतियाँ—तत्पश्चात् प्रज्वलित समिधाओं पर घृत की निम्नाङ्कित पाँच आहुतियाँ दें ।

९९. ओम् भूरग्नये प्राणाय स्वाहा। इदमग्नये प्राणाय–इदं न मम।।

(भूः अग्नये प्राणाय स्वाहा) 'भूः' से इंगित किये जाने वाले अग्नि एवं प्राण के लिये यह आहुति समर्पित है। (इदं अग्नये प्राणाय–इदं न मम) यह आहुति अग्नि तथा प्राण के लिये है–यह मेरी नहीं है अथवा मेरे लिये नहीं है।

१००. ओम् भुवर्वायवे ऽपानाय स्वाहा। इदम् वायवे ऽपानाय –इदं न मम।।

(भुवः वायवे अपानाय स्वाहा) 'भुवः' से इंगित किये जाने वाले वायु तथा अपान के लिये यह आहुति समर्पित है। (इदं वायवे अपानाय–इदं न मम) यह आहुति वायु एवं अपान के लिये है, यह मेरी नहीं है, अथवा मेरे लिये नही है।

१०१. ओम् स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा। इदमादित्याय व्यानाय–इदं न मम।।

(स्वः आदित्याय व्यानाय स्वाहा) 'स्वः' से इंगित किये जाने वाले आदित्य एवं व्यान के लिये यह आहुति समर्पित है। (इदं आदित्याय व्यानाय–इदं न मम) यह आहुति आदित्य एवं व्यान के लिये है, यह मेरी नहीं है, अथवा मेरे लिये नहीं है।

१०२. ओम् भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः स्वाहा। इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापानव्यानेभ्यः –इदं न मम।।

(भूःर्भुवः स्वः अग्नि वायु आदित्येभ्यः प्राण अपान व्यानेभ्यः स्वाहा) भूः, भुवः, स्वः इन महाव्याहृतियों से क्रमशः इंगित किये जाने वाले, वाह्य जगत में स्थित अग्नि, वायु तथा आदित्य और शरीर में स्थित प्राण, अपान एवं व्यान के लिये सम्मिलित रूप से यह आहुति समर्पित है।

(इदं अग्नि वायु आदित्येभ्यः प्राण अपान व्यानेभ्यः-इदं न मम) यह आहुति अग्नि, वायु तथा आदित्य एवं प्राण, अपान तथा व्यान के लिये है, यह मेरी नहीं है अथवा मेरे लिये नहीं है।

वदिक वाङ्मय में 'भूः, भुवः स्वः' इन तीन महाव्याहृतियों का अत्यन्त महत्व है। यह प्रतीक रूप में परमात्मा के साथ साथ अन्य अनेक अर्थों एवं तत्वों का प्रतिनिधित्व करती हैं। यह क्रमशः ऋग्वेद यजुर्वेद तथा सामवेद, इन तीन वेदों से निकाली गयी हैं।

उदाहरणार्थ—

भूः—	सत्	पृथिवी	ऋग्वेद	प्राण	अग्नि
भुवः—	चित्	अन्तरिक्ष	यजुर्वेद	अपान	वायु
स्वः—	आनन्द	द्युलोक	सामवेद	व्यान	आदित्य

(भूः भुवः स्वः) का अर्थ सत्+चित्+आनन्द = सच्चिदानन्द है। इनसे ब्रह्म के अनेक गुणों का वर्णन होता है।

भूः = सत् अर्थात् ब्रह्माण्ड में केवल उसी की सत्ता है तथा वही सर्वाधार एवं स्वयम्भू है, अन्य सब उसी के अंश है, उसी पर आश्रित हैं।

भुवः = चित्। ब्रह्म ज्ञान स्वरूप है, सर्वज्ञ है तथा सर्वव्यापक है। स्वः = सुख। ब्रह्म सुख स्वरूप है, परमानन्द स्वरूप है, उसकी कृपा से ही सुख एवं परमानन्द प्राप्त हो सकता है।

१०३. ओम् आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ।।

तै. आरण्यक । १० । १५

(आपः ज्योतिः) सर्वव्यापक, ज्योतिस्वरूप, प्रकाशवान, (रसः अमृत) आनन्द एवं प्रेम से परिपूर्ण, अविनाशी, (ब्रह्म) सबसे महान (भुभुर्वः स्वः) सच्चिदानन्दस्वरूप (ओम्) सर्वरक्षक परब्रह्म के लिये (स्वाहा) यह आहुति मधुर वचनों के साथ समर्पित है ।

तत्पश्चात् बृहद् यज्ञ के लिये निम्नाङ्कित मन्त्रों से आहुतियां दें ।

१०४.ओम् भूभुर्वः स्वः । अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः ।

आरे बाधस्व दुच्छुनां [स्वाहा] ।। इदमग्नये पवमानाय--

इदं न मम ।

यजु. १९ । ३८, ३५ । ३६ — ऋग्. ९ । ६६ । १९
साम पूर्वा. ६ । ५ । १ क्रम सं. ६२७
साम उत्तरा. १३ । ३ । ३ क्रम सं. १४६४
तथा १४ । ३ (३) १ क. सं. १५१८

(अग्ने) हे अग्ने ! (आयुषि पवसे) आप हमारी आयुओं को, हमारे जीवनों को पवित्र करने वाले हैं, रक्षा करने वाले हैं । (नः इषं ऊर्जं आसुव) हमें अन्न रस तथा बल प्राप्त कराइये तथा (दुच्छुनां)

दुष्ट कुत्तों के समान शत्रुओं एवं दुष्ट मनुष्यों को हमसे (आरे) दूर रखकर (वाधस्व) पीड़ित कीजिये, दण्डित कीजिये।

आध्यात्मिक अर्थ में (दुच्छुनाम्) का अर्थ हमारे अन्दर की दुष्प्रवृत्तियां होगा।

१०५.ओम् भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः

तमीमहे महागयं (स्वाहा)।। इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम।

यजु. २६। ९ (पाठभेद) ऋग् ९। ६६। २०

साम उत्तरा. १४। ३ (३) २ क्र. सं १५१९

(अग्निः) सबके अग्रणी, प्रकाशस्वरूप (ऋषिः) सर्वव्यापक, सर्वदृष्टा, (पवमानः) पवित्र करने वाले [पांचजन्यः] पांच, ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां तथा पांच प्राणों से युक्त समस्त मनुष्यों का, अथवा चार वर्णों में विभक्त सामाजिक प्राणियों एवं सामान्य समाज से अलग जंगलों आदि में रहने वाले पांचवे प्रकार के मनुष्यों इन सभी का हित करने वाले (पुरोहितः) सबके आगे स्थित रहने वाले, सबके पूजनीय, सबके मार्ग दृष्टा, (तम् महागयम्) उन महा प्राण अर्थात् सबके प्राणस्वरूप प्रभु की हम (इमहे) कामना करते हैं, उपासना करते हैं।

अथवा, (महागयम्) विशाल यज्ञ शाला में स्थित (पवमानः) पवित्र करने वाले, (पाञ्चजन्यः) सबका हित करने वाले, (ऋषिः) समस्त प्राणियों में स्थित होने के कारण सर्व दृष्टा,तथा (पुरोहितः) यज्ञादि कार्यों में सर्व प्रथम स्थित किये जाने वाले तथा सबके अग्रणी (तं) उस अग्नि की हम (ईमहे) कामना करते है, उससे अपने कल्याण की याचना करते हैं।

देव, पितर, गन्धर्व, मनुष्य एवं राक्षस अथवा म्लेच्छ, ये मिलकर भी "पञ्चजना:" होते हैं।

१०६. ओम् भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्।

दधद्रयिं मयि पोषं (स्वाहा)॥ इदमग्नये पवमानाय--इदम्

न मम।

यजु. ८। ३८ (पाठभेद) ऋग् ९। ६६। २१
साम उत्त. १४। ३। (३)। ३ क्र. मं. १५२०

(अग्ने) हे अग्ने! (स्वपा:) आप उत्तम कर्म करने वाले हैं, (अस्मे वर्चः सुवीर्यम् पवस्व) हमारे लिये शोभनीय तेज एवं उत्तम बल तथा पराक्रम दीजिये। (मयि रयिं पोषं दधत्) मुझमें धन, ऐश्वर्य एवं पुष्टि अर्थात् नीरोगिता एवं शक्ति धारण कीजिये।

१०७. (ओम् भूर्भुवः स्वः।) प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा

जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु

वयं स्याम पतयो रयीणाम् (स्वाहा)॥ इदं प्रजापतये

--इदं न मम।

यजु. २३। ६५ (पाठभेद) ऋग् १०। १२१। १०
अथर्व. ७। ८० (८५)। ३ (पाठभेद)

(प्रजापते) समस्त प्राणियों की रक्षा करने वाले हे परमात्मा! (ता एतानि विश्वा जातानि) उन, इन अर्थात् भूत, भविष्य तथा वर्तमान में उत्पन्न होने वाले समस्त प्राणियों एवं पदार्थों का (त्वत् अन्यः) आपसे भिन्न अन्य कोई (न परि बभूव) पराभव करने में समर्थ नहीं है, अर्थात् केवल आप ही इस समस्त चराचर जगत को अपने नियन्त्रण में रखने में समर्थ हैं, अन्य कोई नहीं। (यत् कामाः ते जुहुमः) जिन जिन कामनाओं के साथ हम आपकी शरण में आयें, आपकी स्तुति, प्रार्थना एवं उपासना करें, (तत् नः अस्तु) हमारी वह सब कामनायें पूर्ण हों (वयं रयीणाम् पतयः स्याम) तथा हम समस्त प्रकार के धनों एवं ऐश्वर्यों के स्वामी हों। (स्वाहा) मधुर वचनों के साथ यह आहुति प्रजापति के लिये समर्पित है।

१०८. इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृडय।

त्वामवस्युराचके (स्वाहा)।। इदं वरुणाय-इदं न मम।।

ऋग. १।२५।१९ यजु. २१।१
साम उत्तरा. १६।२।१, क्रम. सं. १५८५

(वरुण) हे वरुण! (मे इमं हवम् श्रुधि) मेरे इस आह्वान को, मेरी इस प्रार्थना को सुनिये (च अद्य मृडय) तथा आज मुझे सुखी कीजिये। (अवस्युः त्वां आ चके) अपनी रक्षा की इच्छा करने वाला मैं, आपकी स्तुति करता हूँ तथा आपसे प्रार्थना करता हूँ (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति वरुण देव के लिये समर्पित है।

१०९. तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः ।

अहेडमानो वरुणेह बोध्युरुशꣳस मा न आयुः प्र मोषीः

(स्वाहा) ।।

ऋग् १ । २४ । ११ यजु. २१ । २, १८ । ४९

(वरुण) हे वरुण ! (ब्रह्मणा त्वा वन्दमानः यजमानः) वेदमन्त्रों से आपकी स्तुति करता हुआ यजमान (हविर्भिः आशास्ते) हवि अर्पण करने के द्वारा आपकी कृपा की कामना करता है (तत् त्वा यामि) उस आपको मैं प्राप्त होता हूँ, आपकी शरण में आता हूँ आप से प्रार्थना करता हूँ। (उरुशंसः) बहुतों से प्रशंसित हे वरुण ! (इह अहेडमानः बोधि) इस संसार में सत्कार को प्राप्त होते हुये तथा क्रोध न करते हुये आप हमें ज्ञान प्राप्त कराइये एवं [नः आयुः मा प्रमोषीः] हमारी आयु का अपहरण मत कीजिये, अर्थात् हमें पूर्ण आयु प्रदान कीजिये ।

११०. त्वं नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेडो अव यासिसीष्ठाः ।

यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषाꣳसि प्र

मुमुग्ध्यस्मत् (स्वाहा)।। इदमग्नीवरुणाभ्याम्--इदं न मम ।

ऋग् ४ । १ । ४ यजु. २१ । ३

[अग्ने] हे अग्ने ! [विद्वान् यजिष्ठः वह्नितमः शोशुचानः त्वम्] सब कुछ जानने वाले, अत्यधिक पूजनीय, हवि का अत्यन्त

वहन करने वाले तथा देदीप्यमान आप [नः वरुणस्य देवस्य हेडः अव यासिसीष्ठाः] हमारे प्रति वरुण देव के क्रोध को दूर कीजिये, शान्त कीजिये। [विश्वा द्वेषांसि अस्मत् प्रमुमुग्धि] तथा हमारे समस्त दुर्भाग्यों एवं द्वेषपूर्ण दुर्भावनाओं को हमसे दूर कर दीजिये।

१११. स त्वं नो अग्ने ऽवमो भवोती नेदिष्ठो अस्या उषसो व्युष्टौ।

अव यक्ष्व नो वरुणꣳ रराणो वीहि मृडीकꣳ सुहवो न

एधि (स्वाहा)॥ --इदमग्नीवरुणाभ्याम्--इदं न मम।

ऋग् ४।१।५ यजु. २१।४

[अग्ने] हे अग्ने! [सः त्वं अस्याः उषसः व्युष्टौ ऊती] वह आप इस उषा के प्रकट होने पर, उषा के प्रकाशित होने पर अपनी रक्षण शक्ति के साथ [नः अवमः नेदिष्ठः भव] हमारी अत्यन्त रक्षा करने वाले तथा हमारे अत्यन्त निकट-स्थ अथवा घनिष्ठ होइये। [तात्पर्य यह है कि जैसे अत्यन्त घनिष्ठ व्यक्ति रक्षा करता है, उसी प्रकार रक्षा करने वाले होइये] [रराणः नः वरुण अवयक्ष्व] तथा दान देने वाले, एवं हवि अर्पण करने वाले हम लोगों के प्रति इस संसार के राजा अर्थात् वरुण देव को सन्तुष्ट कीजिये, प्रसन्न कीजिये। [मृडीकं वीहि] आप सुखकारी हवि का भक्षण कीजिये अथवा हमारे लिये सुखकारी होकर कान्तिमान होइये, शोभायमान होइये और (नः सुहवः एधि) भली प्रकार आदर पूर्वक प्रेम से आह्वान करने वाले हम लोगों को प्राप्त होइये।

११२. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।

अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम

(स्वाहा)।। इदं वरुणायाऽऽदित्यायादितये च--इदं न मम।

ऋग्. १।२४।१५ यजु. १२।१२

साम पूर्वा. ६।१।४ क्र. सं. ५८९ अथर्व. १८।४।६९

(वरुण) हे वरुण ! (उत्तमं पाशं अस्मत् उत् श्रथाय) अपने उत्तम कोटि के बन्धन को शिथिल करके हमसे दूर हटा दीजिये,(अधमं पाशं अव श्रथाय) अपने निम्न कोटि के बन्धन को शिथिल करके हमें बन्धन मुक्त कीजिये, (मध्यमं पाशं वि श्रथाय) तथा मध्यम बन्धन को विशेष प्रकार से शिथिल करके, उसका विच्छेदन करके हमसे दूर कर दीजिये। (अथ) तत्पश्चात् (आदित्य) हे अदिति के पुत्र वरुण !(अनागसः तव व्रते वयं अदितये स्याम) निष्पाप होकर हम आपके नियम में दीनता रहित होकर रहें।

अपने मन, वाणी एवं कर्मों द्वारा किये गये विविध प्रकार के पापों एवं दुष्कर्मों के कारण हम वरुण के तीन प्रकार के पाशों से बांधे जाते हैं। ऊपर नीचे तथा बीच के बन्धनों का यह अलंकारिक वर्णन है। पापों को छोड़कर तथा भगवान की कृपा प्राप्त करके ही हम इन बन्धनों से मुक्ति पाकर श्रेष्ठ कर्म करते हुये स्वाभिमान पूर्वक अदीन होकर रह सकते हैं। जीवन का यही श्रेष्ठ आदर्श है। वास्तव में हमारे दुष्कर्म ही हमारे बन्धनों का कारण हैं, अतः उन्हें छोड़ने का हमें सतत् प्रयास करना चाहिये।

प्रत्येक व्यक्ति उत्तम, मध्यम तथा अधम इन तीन प्रकार के पाशों से बंधा हुआ है। उदाहरणार्थ यदि हम किसी शत्रु के बन्धन में असहाय पड़े हों अथवा कारागार में हों, तो यह अधम स्तर का भौतिक बन्धन है किन्तु यदि हम शराब, व्यभिचार आदि दुर्गुणों में फंसे हुये हों, तो यह अधम चारित्रिक बन्धन है, जिससे मुक्ति पाना आवश्यक है।

यदि हम पारिवारिक झंझटों में फंसे हों और पत्नी, सन्तान अथवा भाई बहन आदि के कारण दुःख भोग रहे हों, उनके दुर्व्यवहार आदि से पीड़ित हों, तो ये मध्यम स्तर के सांसारिक बन्धन कहे जायेंगे। व्यवसाय आदि से सम्बन्धित बन्धन भी इसी श्रेणी में आयेंगे किन्तु यदि हम सब प्रकार से समृद्ध एवं सुखी होकर भी स्वार्थ, लोभ, लालच तथा और अधिक धन की लालसा (वित्तैषणा) तथा तृष्णा आदि में फंसे हों अथवा प्रसिद्ध पाने की इच्छा (लोकैषणा) आदि से ग्रस्त हों, तो माया के, संसार के ये सूक्ष्म बन्धन उत्तम प्रकार के बन्धन माने जायेंगे।

११३. भवतं नः समनसौ सचेतसावरेपसौ ।

मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ

भवतमद्य नः (स्वाहा) ॥ इदं जातवेदोभ्याम्--

इदं न मम ।

यजु. ५ । ३, १२ । ६०

(जातवेदसौ) हे अग्नियो ! आप दोनों (नः) हमारे लिये (समनसौ, सचेतसौ अरेपसौ भवतम्) स्नेह पूर्ण मन एवं कृपा पूर्ण चित्त से युक्त तथा पाप अथवा क्रोध से रहित हों। (यज्ञं मा हिंसिष्टम्) हमारे यज्ञ का विनाश न करें तथा (मा यज्ञपतिं) यज्ञपति अथवा यजमान का भी अनिष्ट न होने दें। (शिवौ भवतम् अद्य नः) आज आप दोनो हमारे लिये कल्याण कारी हों। यहाँ दोनो अग्नियों का तात्पर्य गार्हपत्य अग्नि एवं आहवनीय अग्नि से है।

१८. अग्नावग्निश्चरति प्रविष्ट ऋषीणां पुत्रो अभिशस्तिपावा।

स नः स्योनः सुयजा यजेह देवेभ्यो हव्यꣳ

सदमप्रयुच्छन्त्स्वाहा॥

यजु. ५। ४

(ऋषीणाम् पुत्रः) ऋषियों का पुत्र रूप (ऋषियों द्वारा मन्थन करके उत्पन्न किये जाने के कारण यहाँ अग्नि को ऋषियों का पुत्र कहा गया है।) (वा अभिशस्तिपा) तथा शाप से रक्षा करने वाला (अग्निः) अग्नि (अग्नौ प्रविष्टः चरति) आहवनीय अग्नि, (जिसमें आहुति दी जाती है) में प्रविष्ट होकर रहता है। (स नः स्योनः सुयजा इह) वह अग्नि हमारे लिये सुखकारी तथा जिसमें उत्तम प्रकार से यज्ञ किया जाय, ऐसा होकर यहाँ स्थित हो (सदम् अप्रयुच्छन् देवेभ्यः हव्यं यज) तथा सदैव प्रमाद रहित होकर देवों के लिये हव्य का यजन करे, उन्हें हव्य प्रदान करे। (स्वाहा सुआह) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति अग्नि के लिये समर्पित है।

११५. आयुष्मानग्ने हविषा वृधानो घृतप्रतीको घृतयोनिरेधि ।

घृतं पीत्वा मधु चारु गव्यं पितेव पुत्रमभि

रक्षतादिमान्त्स्वाहा ॥

यजु. ३५ । १७

(आयुष्मान् अग्ने) हे चिरंजीवी अग्ने ! (हविषा वृधानः) तुम हवि द्वारा वृद्धि को प्राप्त होने वाले (घृत प्रतीकः) घृत से परिपूर्ण मुख वाले (घृतयोनिः एधि) तथा घृत से, तेज से उत्पन्न होकर प्रज्वलित होने वाले बनो । तात्पर्य यह है कि हमारे द्वारा दी गयी घृत की आहुतियों से तुम्हारा मुख परिपूर्ण हो तथा उससे प्रज्वलित होकर तुम वेदी में शोभायमान हो । घृतयोनिः घृतं योनिः उत्पत्ति स्थानं यस्य । (गव्यं मधु चारु घृतं पीत्वा) गौ का मधुर एवं सुन्दर अर्थात् स्वादिष्ट तथा सुगन्धित घृत का पान करके (पिता पुत्रं इव) पिता जिस प्रकार अपने पुत्र की रक्षा करता है, उसी प्रकार (इमान् अभिरक्षतात्) इन यज्ञ करने वालों की रक्षा कीजिये (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति आपको समर्पित है ।

जैसे किसी अतिथि को सुन्दर एवं सम्मान पूर्ण वचनों के साथ भोजन परोसा जाता है, उसी प्रकार (सु-आह) सुन्दर वचनों के साथ आहुति दी जाती है ।

११६. सप्त ते अग्ने समिधः सप्त जिह्वाः सप्त ऋषयः सप्त धाम प्रियाणि । सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति सप्त योनीरा पृणस्व घृतेन स्वाहा ।।

यजु. १७ । ७९

(अग्ने) हे अग्ने ! (ते सप्त समिधः) तुम्हारी सात समिधायें हैं (सप्त जिह्वाः) ज्वाला रूपी सात जिह्वायें हैं (सप्त ऋषयः) सात ऋषि तुम्हारे दृष्टा हैं, (सप्त प्रियाणि धाम) गायत्री आदि सात छन्द तुम्हारे प्रिय धाम हैं, (सप्त होत्राः सप्तधा त्वा यजन्ति) सात होता तुम्हारे लिये सात प्रकार से यज्ञ करते हैं, (सप्त योनीः) तुम्हारे सात उत्पत्ति स्थान हैं, सात चितियाँ ही सात योनी हैं। (सप्त योनीरिति चितीरेतदाह सप्तचितिकोऽग्निः शतपथ ९ । २ । ३ । ४४) (घृतेन आपृणस्व) हे अग्ने ! तुम घृत से परिपूर्ण हो (स्वाहा सुहुतमस्तु) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति समर्पित है यह भली प्रकार आहूत हो । यज्ञो वै स्वाहाकारः-शतपथ ९ । २ । ३ । ४४ 'स्वाहा' का उच्चारण करके आहुति देना ही यज्ञ करना है।

सप्त समिधः—

पुरुष शरीर में निरन्तर चलने वाले जीवन यज्ञ में शरीराग्नि के लिये निम्नाङ्कित सात प्राण ही सात समिधायें हैं । प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, देवदत्त तथा धनञ्जय । प्राणा वै समिधः प्राणा हि एतं समिन्धते(शतपथ ९ । २ । ३ । ४४) प्राणों को प्राणाग्नि भी कहते है ।

सप्त जिह्वाः- अग्नि की सात ज्वालायें ही उसकी सात जिह्वायें है। अग्नि की सात ज्वालायें ये हैं—

काली कराली च मनोजवा च
विलोहिता चापि सुधूम्रवर्णा।
स्फुलिङ्गिनी विश्वरुची च देवी
लेलायमाना इति सप्त जिह्वाः॥

मुण्डक १।२।४

काली, कराली=अत्यन्त उग्र, मनोजवा=मन के समान चञ्चल, सुलोहिता=सुन्दर लाल रंग वाली, सुधूम्रवर्णा=सुन्दर धुयें के रंग वाली, स्फुलिङ्गनी=चिनगारियों वाली तथा विश्वरुची देवी-सब ओर से प्रकाशित एवं देदीप्यमान।

सप्त ऋषयः- शरीर में दो आखें, दो कान, दो नथुने, तथा मुख इन सात ज्ञानेन्द्रियों को सप्त ऋषयः अथवा सप्तर्षि कहते है।

सप्त धाम—छन्दांसि वा अस्य सप्त धाम प्रियाणि-शतपथ ९।२।३।४४

वेदों में प्रयुक्त निम्नाङ्कित सात छन्द ही अग्नि के प्रिय सात धाम हैं।

	नाम	अक्षर संख्या	विशेष विवरण
१.	गायत्री	२४	इसमें आठ आठ अक्षर के तीन पाद होते हैं।
२.	उष्णिक्	२७	इसमें नौ नौ अक्षरों के तीन पाद होते है।
३.	अनुष्टुभ्	३२	इसमें आठ आठ अक्षरों के चार पाद होते हैं।
४.	बृहती	३६	इसमें नौ नौ अक्षरों के चार पाद होते हैं।

५.	पंक्ति	४०	इसमें आठ आठ अक्षरों के पांच पाद होते हैं।
६.	त्रिष्टुभ्	४४	
७.	जगती	४८	

११७. ज्योतिरसि विश्वरूपं विश्वेषां देवानाᳬं समित् ।

त्वᳬं सोम तनूकृद्भ्यो द्वेषोभ्योऽन्यकृतेभ्य उरु यन्तासि

वरूथᳬं स्वाहा जुषाणो अप्तुराज्यस्य वेतु स्वाहा ॥

यजु. ५।३५

(सोम) हे सोम ! हे जगदीश्वर ! (विश्वरूपं) आप विश्वरूप हैं, आप ही भिन्न भिन्न रूपों में इस संसार में प्रकट हो रहे हैं, प्रकाशित हो रहे हैं (त्वं स्त्री त्वं पुमान असि। आप ही स्त्री हैं आप ही पुरुष हैं, आदि–अथर्ववेद १०।८।२७)। (ज्योतिः असि विश्वेषां देवानां समित्) आप समस्त देवों को प्रकाशित करने वाले तेजोमय ज्योतिस्वरूप हैं। (तनूकृद्भ्य)हमारे शरीर को छेदने अथवा काटने वाले, (द्वेषोभ्यः) हमसे द्वेष करने वाले (अन्य कृतेभ्यः) तथा हमारे शत्रुओं से प्रेरित दुष्टों के (त्वं यन्ता असि) आप नियन्त्रक है, उन्हें रोकने वाले तथा दण्ड देने वाले हैं। (उरु वरूथं) आप प्रभूत बल वाले हैं, अत्यन्त बलवान हैं (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति आपको समर्पित है। (जुषाणः अप्तुः आज्यस्य वेतु) हम पर प्रेम करते हुये सर्वव्यापक प्रभु यह घृत की आहुति स्वीकार करें (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति आपको समर्पित है।

११८. अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम स्वाहा ।।

ऋग्. १ । १८९ । १ यजु. ७ । ४३, ५ । ३६, ४० । १६

(अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ! (अस्मान् राये सुपथा नय) हमें धन, ऐश्वर्य तथा सर्वतोमुखी अभ्युदय के लिये अच्छे मार्ग से, सुपथ से ले चलिये । हे देव ! आप हमारे (विश्वानि वयुनानि विद्वान्) समस्त कर्मों, विचारों तथा मन के भावों को जानने वाले हैं । (अस्मत् जुहुराणम् एनः युयोधि) हमसे कुटिलता पूर्ण पापों को अलग कर दीजिये, (भूयिष्ठां ते नम उक्तिं विधेम) हम आपको बारम्बार प्रणाम करते हुये, नमन करते हुये, आपकी श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक स्तुति तथा उपासना करते हैं । (स्वाहा सु-आह सुहुतमस्तु) उत्तम वचनों के साथ यह आहुति आपको समर्पित है, यह उत्तम प्रकार से आहुत हो ।

११९. अयं नो अग्निर्वरिवस्कृणोत्वयं मृधः पुर एतु प्रभिन्दन् ।

अयं वाजाञ्जयतु वाजसातावयꣳ शत्रूञ्जयतु जर्हृषाणः

स्वाहा ।।

यजु. ५ । ३७

(अयं अग्निः नः वरिवः कृणोतु) यह अग्नि हमको धन दे तथा हमारी रक्षा करे, (अयं मृधः प्रमिन्दन्) यह अग्नि संग्राम में शत्रु की सेनाओं को छिन्न भिन्न करता हुआ (पुरः एतु) आगे बढ़े, (अयं वाजसातौ वाजान् जयतु) यह संग्राम में अन्नों का विजय करे अर्थात् शत्रु के अन्न भण्डारों को जीत ले, (अयं शत्रून् जयतु जर्हृषाणः) यह निरन्तर प्रसन्न रहता हुआ शत्रुओं पर विजय प्राप्त करे (स्वाहा सुआह सुहुतमस्तु) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति अग्नि के लिये समर्पित है, यह भली प्रकार आहुत हो।

१२०. एधोऽस्येधिषीमहि समिदसि तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।

समाववर्त्ति पृथिवी समुषाः समु सूर्यः। समु विश्वमिदं

जगत्। वैश्वानर ज्योतिर्भूयासं विभून्कामान्व्यश्नवै भूः

स्वाहा।

यजु. २०। २३

हे प्रभो! आप (एधः असि) वृद्धि करने वाले हैं, (एधिषीमहि) आपकी कृपा से हम वृद्धि को प्राप्त हों, (समित् असि) जिस प्रकार समिधायें अग्नि को प्रकाशित करती हैं, उसी प्रकार आप मनुष्य की आत्माओं को प्रकाशित करने वाले हैं, (तेजः असि) आप तेजस्वरूप हैं (तेजः मयि धेहि) मुझमें तेज स्थापित कीजिये। (सम् आववर्त्ति पृथिवी) हे प्रभो! आपकी शक्ति से पृथिवी सूर्य के चारों ओर तथा स्वयं अपनी धुरी पर निरन्तर चक्कर लगाती

रहती है, (सम् उषाः) उषा निरन्तर आती जाती रहती है, (सूर्यः सम् आववर्ति) सूर्य नित्य उदय एवं अस्त होता है, (सम् उ इदं विश्वम् जगत्) तथा यह समस्त जगत् गतिमान् रहता है, क्षण क्षण परिवर्तित होता रहता है और जीवन–मृत्यु तथा सृष्टि प्रलय के चक्र में निरन्तर घूमता रहता है। (वैश्वानर ज्योतिः भूयासम्) आपकी कृपा से मैं समस्त समाज एवं प्राणिमात्र का हित करने वाली, उनका नेतृत्व एवं मार्ग दर्शन करने वाली प्रखर ज्योति के समान हो जाऊँ (विभून् कामान् व्यश्नवै) तथा व्यापक अर्थात् अनेक एवं महान् कामनाओं को प्राप्त करूँ (यहाँ संकुचित एवं क्षुद्र कामनाओं के लिये प्रार्थना नहीं की गयी है) [भूः स्वाहा] भूः भुवनं सत्ता मात्रं ब्रह्म तस्मै स्वाहा सुहुतमस्तु। समस्त भुवन अथवा समस्त ब्रह्माण्ड की एक मात्र सत्ता रूप ब्रह्म के लिये यह आहुति मधुर वचनों के साथ समर्पित है, यह भली प्रकार आहुत हो।

१२१. युञ्जते मन उत युञ्जते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो

विपश्चितः। वि होत्रा दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य

सवितुः परिष्टुतिः स्वाहा ॥

ऋग्. ५।८१।१ यजु. ५।१४, ११।४, ३७।२

(विप्राः) मेधावी विद्वान् तथा ज्ञानी जन [बृहतः विपश्चितः विप्रस्य] महान्, अनन्त ज्ञानयुक्त, सर्वज्ञ परमात्मा में (मनः युञ्जते उत धियः युञ्जते) अपने मन तथा बुद्धि को संयुक्त करते हैं अर्थात् आत्मा

विषयों से हटाकर अपने मन एवं बुद्धि को केवल एकमात्र परमात्मा में ही एकाग्र रूप से केन्द्रित कर देते हैं, उसी की भावना, उसी का ध्यान तथा उसी का अनन्य भाव से चिन्तन करते हैं। (पहले मन और फिर बुद्धि को संयुक्त किया जाता है क्योंकि बुद्धि मन से अधिक सूक्ष्म है। (मनसस्तु परा बुद्धिः–गीता) तथा मन के बिना संसार में कोई कार्य नहीं किया जा सकता। (वयुनावित् एक इत् होत्राः विदधे) समस्त कर्मों, मनोभावों एवं चेष्टाओं को जानने वाले तथा अकेले ही समस्त यज्ञों, श्रेष्ठ कर्मों का सम्पादन करने वाले तथा समस्त जगत् को धारण करने वाले (सवितुः देवस्य परिष्टुतिः मही) सविता देव की स्तुति महान् एवं श्रेष्ठ है। तात्पर्य यह है कि केवल परमात्मा की ही स्तुति प्रार्थना एवं उपासना करना चाहिये,वही कल्याण कारी है, अन्य किसी देवता, गुरु अथवा अन्य पुरुष की नहीं चाहे वह कितना ही महान् क्यों न हो। (स्वाहा सु-आह)उत्तम वचनों के साथ यह आहुति सविता देव को समर्पित है।

(सविता सर्वस्य प्रसविता)समस्त जगत को उत्पन्न करने वाला परमेश्वर सविता है। (होत्रा होमकर्त्तारः) यज्ञ कराने वाले विद्वानों को होत्रा कहते हैं।

१२२. इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।

समूढमस्य पाꣳसुरे स्वाहा ॥

यजु. ५। १५

ऋग्. १। २२। १७ साम पूर्वा. २। ११। ९ क्र. सं. २२२

साम उत्त. १८। २। १ क्र. सं १६६९

अथर्व. ७। २७। ४ (पाठभेद)

(इदं विष्णुः विचक्रमे) व्यापक प्रभु ने यह सब पराक्रम किया है, यह समस्त संसार उसी के पराक्रम से उत्पन्न हुआ है और उसी पर आधारित है। अथवा, विष्णु ने इस समस्त जगत को व्याप्त किया हुआ है, वह इसके कण कण में व्याप्त है। (त्रेधा निदधे पदम्) विष्णु ने अपने पद को, अपने सामर्थ्य को तीन प्रकार से स्थापित किया है। उनका एक पद द्युलोक में, एक अन्तरिक्ष में तथा एक पृथिवी में रखा हुआ है। (समूढम् अस्य पांसुरे) आकाश में कार्य करने वाला उनका पद, उनका अंश गुप्त अथवा अदृश्य रहता है। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति विष्णु को समर्पित है।

संसार को चलाने वाली तथा उसे जीवित रखने वाली भगवान की शक्तियाँ पृथिवी पर अग्नि, आकाश में वायु एवं विद्युत तथा द्युलोक में आदित्य के रूप में कार्य करती हैं। इनमें से वायु एवं विद्युत दोनों अदृश्य रहते हैं।

अथवा, (समूढमस्य पांसुरे) भगवान उसी प्रकार अगोचर एवं अज्ञात है जिस प्रकार पैरों के चलने से एकत्रित होने वाली धूलि के स्थान पर पद चिह्न स्पष्ट दिखायी नहीं देते।

यदि विष्णु के तीन पादों को भूत, भविष्य तथा वर्तमान माना जाय, तो यह स्पष्ट है कि इनमें से भविष्य कालीन पद सदैव अज्ञात रहता है।

जब विष्णु का अर्थ सूर्य किया जायेगा, तब (इदं विष्णुः विचक्रमे) का अर्थ होगा कि यह समस्त प्रकाश, ऊर्जा एवं उष्णता आदित्य का ही पराक्रम है (त्रेधा निदधे पदम्) उसने अपनी किरणों को तीनों लोकों में स्थापित किया है। (समूढं अस्य पांसुरे) उसकी किरणों का एक अंश आकाश में गुप्त रहता है, अदृश्य रहता है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है कि सूर्य की किरणों में से इन्फ्रारेड तथा अल्ट्रा

वायलेट अंश हमें दृष्टि गोचर नहीं होता। इसी तथ्य का उल्लेख इस मन्त्र में किया गया है।

अथवा, (समूढ अस्य पांसुरे) का अर्थ होगा कि आदित्य का आकाश में कार्य करने वाला विद्युत रूपी पाद अदृश्य रहता है,केवल उसका तीव्र प्रकाश ही कभी कभी दृष्टि गोचर होता है। अग्नि, विद्युत तथा आदित्य वास्तव में तीन लोकों में कार्य करने वाले अग्नि के ही तीन रूप हैं।

यह उल्लेखनीय है कि इस मन्त्र का कोई सम्बन्ध वामन अवतार की काल्पनिक पौराणिक कथा से नहीं है, यद्यपि सायण एवं महीधर आदि ने अपने भाष्यों में इसका उल्लेख किया है।

१२३. इरावती धेनुमती हि भूतꣳ सूयवसिनी मनवे दशस्या।

व्यस्कभ्ना रोदसी विष्णवेते दाधर्थ पृथिवीमभितो मयूखैः

स्वाहा॥

यजु. ५।१६

(विष्णो) हे सर्वव्यापक जगदीश्वर! आपकी कृपा से ही (रोदसी) यह द्यावा पृथिवी (इरावती) उत्तम अन्नों से युक्त, (धेनुमती) गौवों आदि पशुओं से युक्त (सूयवसिनी) विभिन्न प्रकार की सुन्दर वस्तुओं से युक्त तथा (मनवे दशस्या) मनुष्यों को जीवन एवं यज्ञों के लिये आवश्यक सभी साधन उपलब्ध कराने वाले (भूतं भवतं) हैं। आपने द्युलोक एवं पृथिवी (एते) इन दोनों को (व्यस्कभ्नाः) विभक्त करके अलग अलग स्थापित किया है तथा

(पृथिवीम् अभितः मयूखैः दाधर्थ) इस पृथिवी को चारों ओर से अपनी आकर्षण शक्ति से युक्त किरणों से धारण कर रखा है। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति आपको समर्पित है।

विष्णु का अर्थ सूर्य करने पर मन्त्र से यह स्पष्ट होता है कि सूर्य अपनी आकर्षण शक्ति की किरणों से पृथिवी को उसके स्थान पर धारण किये हुये है।

१२४. तद्विष्णोः परमं पदम् सदा पश्यन्ति सूरयः।

दिवीव चक्षुराततम् (स्वाहा) ॥

यजु. ६ । ५ ऋग्. १ । २२ । २०

साम उत्तरा. १८ । २ । ४, क्र. सं. १६७२ । अथर्व. ७ । २७ । ७

(सूरयः) स्तुति करने वाले ज्ञानी भक्त (विष्णोः) व्यापक प्रभु के (परमं पदम्) सर्वश्रेष्ठ पद को, उसके कल्याणकारी स्वरूप को (दिवि आततम्) द्युलोक में अपने तेज तथा प्रकाश से सर्वत्र व्याप्त (चक्षुः इव) सूर्य के समान (सदा पश्यन्ति) सदा देखते हैं अथवा, (दिवि) सूर्य के प्रकाश में (आततम् चक्षुः इव) जैसे नेत्र की दृष्टि व्याप्त हो जाती है अर्थात् नेत्र को स्पष्ट दिखायी पड़ने लगता है, उसी प्रकार ज्ञानी जन विष्णु के परम पद को, उसके स्वरूप को स्पष्ट रूप से देखते हैं।

१२५. दिवो विष्ण उत वा पृथिव्या महो विष्ण उरोरन्तरिक्षात्

हस्तौ पृणस्व बहुभिर्वसव्यैराप्रयच्छ दक्षिणादोत सव्यात्

(स्वाहा) ।।

यजु. ५।१९ (पाठभेद) अथर्व. ७।२७।८

(विष्ण) हे विष्णु ! हे सर्वव्यापक प्रभु ! (दिवः उत वा पृथिव्याः) द्युलोक तथा पृथिवी लोक से (विष्ण) तथा हे विष्णु ! (महः उरोः अन्तरिक्षात्) महान् एवं विस्तृत अन्तरिक्ष से (बहुभिः वसव्यैः हस्तौ पृणस्व) विविध प्रकार के धनों को प्रचुर मात्रा में अपने दोनों हाथों में भर लीजिये (दक्षिणात् उत सव्यात्) तथा अपने दाहिने और बायें दोनों हाथों से (आ प्रयच्छ) वह समस्त धन हमें भरपूर दीजिये। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति आपको समर्पित है।

१२६. उरु विष्णो वि क्रमस्वोरु क्षयाय नस्कृधि ।

घृतं घृतयोने पिब प्रप्र यज्ञपतिं तिर स्वाहा ।।

अथर्व. ७।२७।३ (पाठभेद) यजु. ५।३८, ५।४१

(विष्णो) हे विष्णु ! हे यज्ञाग्नि ! (यज्ञो वै विष्णुः यज्ञ ही विष्णु है-शतपथ १।१।२।१३) (उरु विक्रमस्व) हमारे हित के लिये बहुत पराक्रम कीजिये, (उरु क्षयाय नः कृधि) तथा निवास के लिये विस्तृत एवं श्रेष्ठ गृह हमें प्राप्त कराइये। (घृतयोने) घृत अथवा तेज से उत्पन्न होने वाले तथा घृत से प्रदीप्त होने वाले

हे अग्नि देव ! (घृतं प्रपिब) घृत का भली प्रकार पान कीजिये, हमारे द्वारा समर्पित घृत की आहुतियों को स्वीकार कीजिये। (यज्ञपतिं प्रतिर) तथा यज्ञ की रक्षा करने वाले इस यजमान को संकटों से पार कीजिये, उसकी सब प्रकार से वृद्धि कीजिये। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति आपको समर्पित है।

१२७. उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः।

दृशे विश्वाय सूर्यꣳ स्वाहा ॥

ऋग्. १ । ५० । १ यजु. ७ । ४१, ८ । ४१, तथा ३३ । ३१
साम पूर्वा. १ । ३ । ११, क्र. सं. ३१ अथर्व. १३ । २ । १६
तथा २० । ४७ । १३

(जातवेदसं) समस्त उत्पन्न प्राणियों एवं पदार्थों को जानने वाले तथा हमें जीवन, प्रकाश, ऊर्जा एवं प्रेरणा देने वाले (त्यं देवं) उस देव को (केतवः उत् वहन्ति) किरणें ऊपर उठाती हैं (दृशे विश्वाय सूर्यं) जिससे कि समस्त विश्व सूर्य का दर्शन कर सकें। (स्वाहा)सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति सूर्य देव को समर्पित है।

सूर्योदय का यह अत्यन्त सुन्दर अलंकारिक एवं काव्यात्मक वर्णन है। सूर्योदय के समय क्षितिज पर पहले सूर्य की अरुणिम आभा बिखेरती हुयी उसकी किरणें ही दिखायी देती हैं,सूर्य नहीं। सूर्य तो धीरे धीरे ऊपर उठकर पहले थोड़ा और बाद में पूरा दिखायी देता है, जिससे ऐसा आभास होता है कि मानों उसकी किरणें ही उसे धीरे धीरे ऊपर उठा रहीं हों ताकि समस्त जगत् उसके दर्शन कर सके। इसी काव्यात्मक कल्पना का उल्लेख इस मन्त्र में है।

सूर्य के प्रकाश में समस्त प्राणियों एवं पदार्थों का ठीक ठीक बोध होता है अतएव सूर्य को जातवेदसं कहा गया है। जातं वेदो ज्ञानं धनं च यस्मात् तम् जातवेदसं । अथवा जातवेदसम् जातप्रज्ञानम् । अथवा जातानि वेत्ति इति जातवेदः। देवो दानाद्योतनाद्वा द्युस्थाने वा–निरुक्त ७ । २० । दान देने से,प्रकाश अथवा ज्ञान देने से,स्वयं प्रकाशमान होने से अथवा द्युलोक में स्थित होने से देव कहा जाता है। सूर्य में ये समस्त गुण होने से सूर्य प्रमुख देव है जैसा कि अगले मन्त्र में स्पष्ट किया गया है। वैदिक वाङ्मय में सूर्य को संसार का प्राण तथा चराचर जगत का आत्मा कहा जाता है।

१२८. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।

आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳ सूर्य आत्मा

जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥

ऋग्. १ । ११५ । १ यजु. ७ । ४२, १३ । ४६
साम पूर्वा. ६ । ५ । ३, क्रम सं. ६२९ अथर्व २० । १०७ । १४
तथा १३ । २ । ३५

(देवानां अनीकं) समस्त देवों के मुख-स्थानीय अर्थात् समस्त देवो में प्रमुख अथवा श्रेष्ठ (कुछ विद्वानों ने देवानां का अर्थ किरणें करते हुये देवानां अनीकं का अर्थ किरणों का समूह किया है, जो कि उचित प्रतीत नहीं होता) (चित्रं) यह अद्भुत देव अर्थात् सूर्य (उत् अगात्) उदय हुआ है, (चक्षुः मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः) यह

मित्र, वरुण, अग्नि अर्थात् समस्त देवताओं एवं मनुष्यों (ये तीनों शब्द देवताओं एवं मनुष्यों दोनों के लिये प्रयोग किये जाते है तथा यहां इनका प्रयोग उपलक्षण के रूप में हुआ है) के चक्षु अर्थात् तेज के समान है क्योंकि इसके प्रकाश में ही सब कुछ स्पष्ट रूप से दृष्टि गोचर होता है. (आप्राः द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षम्) उदय होते ही इसने सब ओर से द्युलोक, अन्तरिक्ष तथा पृथिवी को अपने प्रकाश से परिपूर्ण कर दिया है, आलोकित कर दिया है। (सूर्य आत्मा जगतः तस्थुषः च) वास्तव में यह सूर्य समस्त जङ्गम तथा स्थावर अर्थात् चराचर जगत का आत्मा है (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति सूर्य देव को समर्पित है।

१२९. स्वर्ण घर्मः स्वाहा स्वर्णार्कः स्वाहा स्वर्ण शुक्रः स्वाहा

स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा स्वर्ण सूर्यः स्वाहा ।।

यजु. १८।५०

शतपथ ब्राह्मण ९।४।२।१८–२५ में निम्न प्रकार उल्लेख है—

अब 'अर्काश्वमेध सन्तति' आहुतियां देता है। यह अग्नि ही अर्क है। यह आदित्य अश्वमेध है। जब बने थे तब ये अलग अलग थे। इन दोनों को देवों ने आहुतियों द्वारा पास पास कर दिया।

(स्वर्ण घर्मः स्वाहा) यह आदित्य घर्म है। इस आदित्य को इस अग्नि में स्थापित करता है। (स्वर्णार्कः स्वाहा) यह अग्नि अर्क

हूं। इस प्रकार इस अग्नि को उस आदित्य में स्थापित करता हूँ। (स्वर्ण शुक्रः स्वाहा) यह आदित्य शुक्र है, उसको फिर उसमें स्थापित करता हूं। (स्वर्ण ज्योतिः स्वाहा) यह अग्नि ज्योति है। इसको फिर इसमें स्थापित करता हूँ। (स्वर्ण सूर्यः स्वाहा) यह आदित्य सूर्य है। इसको सबसे उत्तम बनाता हूँ।

घर्म, अर्क, तथा शुक्र, अग्नि के नाम हैं, उनको प्रसन्न करता हूं, हवि के द्वारा उनको देवता बनाता हूं, क्योंकि देवता वही है, जिसके लिये हवि दी जाती है।

ये पांच आहुतियाँ देता है। वेदी में पांच चिति होती हैं। संवत्सर में पांच ऋतु। संवत्सर अग्नि है। जितना अग्नि है, जितनी उसकी मात्रा है, उतनी ही बार उसको 'संतोनोति संदधाति' तानता है, रखता है तथा उतने ही अन्न से उसको प्रसन्न करता है। कामनाओं के लिये यह रथ जोता जाता है।

अथवा, (स्वः न घर्मः) दिन हमारे लिये सुख के समान हो, अत्यन्त सुखमय हो, (स्वाहा) एतदर्थ यह आहुति समर्पित है, (स्वः नः अर्कः स्वाहा) अन्न हमारे लिये सुख के समान हो, अत्यन्त सुखमय हो, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है, (स्वः नः शुक्रः स्वाहा) जल हमारे लिये सुखमय हो, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है, (स्वः न ज्योतिः स्वाहा) प्रकाश हमारे लिये अत्यन्त सुखमय हो, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है, (स्वः नः सूर्यः स्वाहा) सूर्य हमारे लिये अत्यन्त सुखमय हो, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है। घर्मः अहर्नाम (निघण्टु १।९) अर्कः अन्ननाम [निघ. २।७] [शुक्रम् उदकनाम] [निघ. १।१२]

१३०. सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम् ।

सनिं मेधामयासिषᳬ स्वाहा ।।

ऋग्. १ । १८ । ६ यजु. ३२ । १३

(सदसः पति) विश्व रूपी इस सदन, इस यज्ञ गृह के स्वामी तथा रक्षक (अद्भुतं प्रिय इन्द्रस्य काम्यम्) अद्भुत, सब के प्रिय तथा जीवात्मा के काम्य अर्थात् जीवात्मा जिन्हें प्राप्त करने की सदा कामना करता है, ऐसे परमात्मा से हम (सनिम्) धन तथा उपभोग की विभिन्न वस्तुओं एवं (मेधां) श्रेष्ठ विवेक पूर्ण बुद्धि की (अयासिषम्) याचना करते हैं। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति परमात्मा के लिये समर्पित है।

१३१. यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते ।

तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ।।

यजु. ३२ । १४

(देवगण: पितरः च) देवगण तथा पितर अर्थात् समस्त विद्वान् एवं हमारे पूर्वज तथा श्रेष्ठ वयोवृद्ध रक्षा करने वाले ज्ञानी जन (यां मेधां उपासते) जिस विवेक पूर्ण उत्तम बुद्धि की उपासना करते हैं, उसे प्राप्त करने का प्रयास करते हैं, (अग्ने) हे प्रकाशस्वरूप परब्रह्म ! (तया मेधया) उसी उत्तम बुद्धि से (माम् अद्य मेधाविनं

कुरु) आज मुझे मेधावी कीजिये, बुद्धिमान बनाइये। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति परमात्मा को समर्पित है। अथवा, मैं पूर्ण रूपेण अपने को भगवान के प्रति समर्पित करता हूँ, शरणागत होता हूँ।

१३२. मेधां मे वरुणो ददातु मेधामग्निः प्रजापतिः।

मेधामिन्द्रश्च वायुश्च मेधां धाता ददातु मे स्वाहा॥

यजु. ३२। १५

(मेधां मे वरुणः ददातु) श्रेष्ठ वरुण देव, अर्थात् सर्वश्रेष्ठ प्रभु मुझे मेधा प्रदान करें, (मेधां अग्निः प्रजापतिः) प्रजाओं के, प्राणियों के रक्षक प्रकाशस्वरूप परमात्मा मुझे मेधा प्रदान करें (मेधां इन्द्रः च वायुः च) इन्द्र तथा वायु अर्थात् ऐश्वर्यवान एवं गति, प्राण तथा बल देने वाले सर्वशक्तिमान परमात्मा मुझे मेधा प्रदान करें (मेधां धाता ददातु मे) सबका धारण एवं भरण पोषण करने वाले परमात्मा मुझे मेधा प्रदान करें। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति परमात्मा को समर्पित है।

१३३. इदं मे ब्रह्म च क्षत्रं चोभे श्रियमश्नुताम्।

मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमां तस्यै ते स्वाहा॥

यजु. ३२। १६

(इदं मे ब्रह्म) मेरा यह ब्रह्म तेज अर्थात् ज्ञान एवं त्याग तथा तपस्या का तेज [च क्षत्रं] तथा क्षात्र तेज अर्थात् सब की रक्षा करने वाली शक्ति का तेज [च मे] ये दोनों, [श्रियं अश्नुतां] शोभा को प्राप्त हों अर्थात् मेरा तेज शोभनीय हो, अत्याचारी एवं निन्दनीय न हो, । [देवाः मयि] देव गण मुझमें [उत्तमां श्रियं] उत्तम शोभा तथा लक्ष्मी को [दधतु] स्थापित करें [तस्यै ते स्वाहा] उस तेरे लिये अर्थात् उस श्री के लिये यह आहुति समर्पित है ।

१३४. अहः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ।

रात्रिः केतुना जुषताꣳ सुज्योतिर्ज्योतिषा स्वाहा ।।

यजु. ३७ । २१

[ज्योतिषा] सूर्य के प्रकाश से [सुज्योतिः] उत्तम प्रकार से, सुन्दरता से प्रकाशयुक्त [अहः केतुना जुषतां] दिन का हम ज्ञान एवं श्रेष्ठ कर्मों के साथ प्रीतिपूर्वक सेवन करें अर्थात् ज्ञान पूर्वक श्रेष्ठ कर्म करते हुये दिन का आनन्द लें [स्वाहा] सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति दिन के लिये समर्पित है। [ज्योतिषा सुज्योतिः] चन्द्रमा, तारागण तथा अग्नि एवं विद्युत के प्रकाश से, सुन्दरता से प्रकाशित [रात्रिः केतुना जुषतां] रात्रि का हम ज्ञान एवं श्रेष्ठ कर्मों के साथ प्रीति पूर्वक, सुख पूर्वक सेवन करें । [स्वाहा] उत्तम वचनों के साथ यह आहुति रात्रि को समर्पित है ।

१३५. मयीदमिन्द्र इन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम् ।
अस्माकᳬ सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिष उपहूता पृथिवी
मातोप मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात्स्वाहा ॥

यजु. २ । १०

(इन्द्रः) हे इन्द्र ! (मयि) मुझमें (इदं इन्द्रियं दधातु) यह इन्द्रिय शक्ति स्थापित कीजिये अर्थात् मेरी इन्द्रियों को अत्यन्त बलशाली बनाइये (अस्मान् रायः मघवानः सचन्ताम्) हम धनवान होकर सब प्रकार के धन ऐश्वर्य प्राप्त करें। (अस्माकम् आशिषः सत्या सन्तु) हमारी आशायें एवं कामनायें सत्य हों, [नः आशिषः सत्या सन्तु] हमारे आशीर्वाद सत्य हों, हमारे अभीष्ट कार्य सिद्ध हों, [उपहूता पृथिवी माता] मेरे द्वारा पृथिवी माता की सेवा की गयी, [पृथिवी माता माम उपह्वयताम्] वह पृथिवी माता मुझे भूमि से उत्पन्न होने वाले अन्न, फल, ओषधि तथा अन्य पदार्थों के उपभोग की अनुमति दे (अग्निः आग्नीध्रात्) तथा अग्नि हमारे द्वारा यज्ञ तथा अन्य श्रेष्ठ कार्यों के लिये प्रदीप्त किये जाने पर सुख प्रदान करे (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति इन्द्र को समर्पित है।

तात्पर्य यह है कि हम भूमि की सेवा करने के उपरान्त ही उससे उत्पन्न पदार्थों का सेवन करें। हम भूमि को उपजाऊ तथा सब प्रकार से उत्तम एवं पवित्र बनायें, उसकी उर्वरता एवं पवित्रता नष्ट न करें। इसी प्रकार अग्नि यज्ञ के लिये तथा अन्य उत्तम

कार्यों के लिये प्रदीप्त किये जाने पर ही सुख प्रदान करती है अत: हमें अग्नि में यज्ञ द्वारा श्रेष्ठ पदार्थों की ही आहुति देनी चाहिये जिससे पर्यावरण दूषित न हो और हम स्वस्थ एवं सुखी जीवन व्यतीत कर सकें।

१३६. स्वाहा यज्ञं मनसः स्वाहोरोरन्तरिक्षात्स्वाहा

द्यावा पृथिवीभ्याᳬं स्वाहा वातादारभे स्वाहा ॥

यजु. ४ । ६

(स्वाहा) उत्तम कल्याणकारी वेद वाणी से, वेद मन्त्रों से (मनसः यज्ञं स्वाहा) निष्ठा पूर्वक मन लगाकर उत्तम प्रकार से यज्ञ करते हैं. (उरोः अन्तरिक्षात् स्वाहा) विस्तृत अन्तरिक्ष की सहायता से यज्ञ करते हैं। (स्वाहा स्व-आ-हा) लोक कल्याण के लिये आत्म समर्पण करना,त्याग करना भी यज्ञ है। (द्यावा पृथिवीभ्यां स्वाहा) द्युलोक तथा पृथिवी लोक के कल्याण के लिये यज्ञ करते हैं (वातात् आरभे स्वाहा) वायु की अनुकूलता से तथा वायु की पवित्रता के लिये यज्ञ आरम्भ करते है। 'यज्ञो वै स्वाहाकारो'। स्वाहाकार यज्ञ है क्योंकि स्वाहाकार के साथ ही हवि समर्पित करते हैं।

१३७. आकूत्यै प्रयुजेऽग्नये स्वाहा मेधायै मनसेऽग्नये स्वाहा

दीक्षायै तपसेऽग्नये स्वाहा सरस्वत्यै पूष्णेऽग्नये स्वाहा ।

आपो देवीर्बृहतीर्विश्वशम्भुवो द्यावा पृथिवी उरो

अन्तरिक्ष । बृहस्पतये हविषा विधेम स्वाहा ।।

यजु. ४ । ७

(आकूत्यै प्रयुजे) संकल्प को पूर्ण करने के लिये प्रेरणा देने वाले तथा उसे पूर्ण कराने वाले (अग्नये स्वाहा) अग्नि के लिये यह आहुति समर्पित है । अग्नि का अर्थ है ऊर्जा, बल पराक्रम, उत्साह, प्रकाश एवं जीवनी शक्ति । इन्हीं गुणों के द्वारा जीवन का हर संकल्प पूर्ण होता है । (मेधायै मनसे) उत्तम बुद्धि तथा उसके लिये आवश्यक स्वस्थ एवं शिव संकल्प युक्त मन देने वाले (अग्नये स्वाहा) अग्नि के लिये यह आहुति समर्पित है, (दीक्षायै तपसे अग्नये स्वाहा) यम नियमों का पालन करने के लिये श्रम करने तथा कष्ट उठाने की शक्ति देने वाले अग्नि के लिये यह आहुति समर्पित है, (सरस्वत्यै पूष्णे अग्नये स्वाहा) वेदमन्त्रों का उच्चारण करने के लिये आवश्यक उत्तम ओजस्वी वाणी अथवा ज्ञान प्राप्त करने तथा उसे धारण करने के लिये आवश्यक बुद्धि, मन तथा ज्ञानेन्द्रियों का पोषण करने वाले अग्नि के लिये यह आहुति समर्पित है। (देवीः बृहतीः

विश्व शं भुवः आपः) दिव्य गुणो से युक्त, महान तथा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध एवं समस्त विश्व को सुख देने वाले हे जलो ! (द्यावा पृथिवी) हे द्युलोक तथा पृथिवी ! (उरो अन्तरिक्ष) हे विस्तृत अन्तरिक्ष ! तुम्हारे लिये तथा (बृहस्पतये) बृहस्पति अर्थात् सूर्य आदि महान् देवो के अधिपति उस परमात्मा के लिये हम (हविषा विधेम) श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक हवि अर्पण करते हैं। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति समर्पित है ।

१३८. अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहा ऽपां मोदाय स्वाहा सवित्रे
स्वाहा वायवे स्वाहा विष्णवे स्वाहेन्द्राय स्वाहा बृहस्पतये
स्वाहा मित्राय स्वाहा वरुणाय स्वाहा ।

यजु. २२ । ६

[illegible] आहुति समर्पित है, सोम अर्थात् सुख एवं शान्ति देने वाले चन्द्रमा के लिये यह आहुति समर्पित है, (अपां मोदाय स्वाहा) आनन्द देने वाले जलों के लिये यह आहुति समर्पित है [सवित्रे स्वाहा] समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले सविता देव के लिये अथवा सबको प्रेरणा देने वाले सूर्य देव के लिये यह आहुति समर्पित है [वायवे स्वाहा] वातीति वायुः। गति शील वायु देव के लिये यह आहुति समर्पित है [विष्णवे स्वाहा] व्याप्नोति विष्णुः। सर्वव्यापक विष्णु देव के लिये यह आहुति समर्पित है ।

[इन्द्राय स्वाहा] परम ऐश्वर्यवान इन्द्र देव अथवा विद्युत के लिये यह आहुति समर्पित है [बृहस्पतये स्वाहा] बृहतां वेदानां पतिर्बृहस्पतिः। महती वेदवाणी एवं ज्ञान के स्वामी बृहस्पति के लिये यह आहुति समर्पित है, [मित्राय स्वाहा] समस्त चराचर जगत के मित्र तथा हितकारी देव के लिये यह आहुति समर्पित है, (वरुणाय स्वाहा) श्रेष्ठ वरुण देव के लिये यह आहुति समर्पित है।

१३९. अग्नये स्वाहा सोमाय स्वाहेन्द्राय स्वाहा पृथिव्यै स्वाहा-

ऽन्तरिक्षाय स्वाहा दिवे स्वाहा दिग्भ्यः स्वाहाऽऽशाभ्यः

स्वाहोर्व्यै दिशे स्वाहार्वाच्यै दिशे स्वाहा ।।

यजु. २२ । २९

अग्नि के लिये यह आहुति समर्पित है, सोम के लिये यह आहुति समर्पित है, इन्द्र के लिये यह आहुति समर्पित है, पृथिवी के लिये यह आहुति समर्पित है, अन्तरिक्ष के लिये यह आहुति समर्पित है, द्युलोक के लिये यह आहुति समर्पित है, [आशाभ्यः स्वाहा] चारों दिशाओं के लिये यह आहुति समर्पित है, [ऊर्व्यै दिशे स्वाहा] ऊर्ध्व दिशा के लिये यह आहुति समर्पित है, [अर्वाच्यै दिशे स्वाहा] नीचे की दिशा के लिये यह आहुति सुन्दर वचनों के साथ समर्पित है।

१४०. प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे

स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा।

यजु. २२। २३

(प्राणाय स्वाहा) प्राण अर्थात् भीतर से बाहर निकलने वाले प्राण वायु के लिये यह आहुति समर्पित है (अपानाय स्वाहा) अपान अर्थात् श्वास के साथ अन्दर जाने वाले प्राण वायु के लिये यह आहुति सुन्दर वचनों के साथ समर्पित है, (व्यानाय स्वाहा) व्यान अर्थात् नाभि से नीचे कार्य करने वाले तथा मल मूत्र आदि का विसर्जन करने वाले प्राण वायु के लिये यह आहुति समर्पित है, (चक्षुषे स्वाहा) नेत्र इन्द्रिय के लिये यह आहुति समर्पित है (वाचे स्वाहा) वाणी के लिये यह आहुति समर्पित है, (मनसे स्वाहा) मन के लिये यह आहुति समर्पित है।

प्राण, अपान, व्यान, चक्षु, श्रोत्र, वाणी तथा मन, ये सप्त होता कहलाते हैं क्योंकि इन्हीं से जीवन रूपी यज्ञ सम्पन्न होता है।

१४१. आयुर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा प्राणो यज्ञेन कल्पताᳬ

स्वाहाऽपानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा व्यानो यज्ञेन

कल्पताᳬ स्वाहोदानो यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा समानो

यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा चक्षुर्यज्ञेन कल्पताᳬ स्वाहा

श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा वाग्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा

मनो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा ऽऽत्मा यज्ञेन कल्पताᳬं

स्वाहा ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा ज्योतिर्यज्ञेन

कल्पताᳬं स्वाहा स्वर्यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा पृष्ठं यज्ञेन

कल्पताᳬं स्वाहा यज्ञो यज्ञेन कल्पताᳬं स्वाहा ।

यजु. २२ । ३३

[आयुः यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा] आयु यज्ञ से सुखी एवं समृद्ध हो तथा वृद्धि को प्राप्त हो,एतदर्थ यह आहुति समर्पित है. [प्राणः यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा] प्राण अर्थात् बाहर जाने वाला प्राण वायु जिससे वाणी आदि इन्द्रियाँ कार्य करती हैं, यज्ञ से समर्थ हो, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है,[अपानः यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा]अपान अर्थात् श्वास के साथ अन्दर जाने वाला प्राण वायु यज्ञ से समर्थ हो, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है, [व्यानः यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा] व्यान अर्थात् नाभि से नीचे की ओर कार्य करने वाला तथा मल मूत्र का विसर्जन करने वाला प्राण वायु यज्ञ से समर्थ हो, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है, [उदानः यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा] उदान अर्थात् कण्ठ से ऊपर कार्य करने वाला प्राण वायु यज्ञ से समर्थ हो, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है, [समानः यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा] समान अर्थात् समस्त शरीर में समान रूप से जीवनी शक्ति का संचार करने

वाला प्राण वायु यज्ञ से समर्थ हो, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है, [प्राण के उपरोक्त पांच प्रमुख भाग हैं, इनके अतिरिक्त पांच अन्य गौण भागों का भी उल्लेख कहीं कहीं मिलता है। ये हैं—नाग, कूर्म कृकल, देवदत्त तथा धनञ्जय। [चक्षुः यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा] चक्षु यज्ञ से समर्थ हों, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है, [श्रोत्रं यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा] श्रोत्र यज्ञ से समर्थ हों, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है, [चक्षु एवं श्रोत्र ज्ञानेन्द्रियों के प्रतीक हैं] [वाग् यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा] वाणी तथा अन्य कर्मेन्द्रियां यज्ञ से समर्थ हों, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है, [मनः यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा] मन यज्ञ से समर्थ हो, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है, [मन यहां, मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार इस अन्तःकरण चतुष्टय का प्रतीक है।] (आत्मा यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा) आत्मा यज्ञ से समृद्ध हो, कल्याण मार्ग पर परमात्मा की ओर अग्रसर हो, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है, (ब्रह्मा यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा) ब्रह्मा अर्थात् चारों वेदों का उत्कृष्ट विद्वान् यज्ञ से समर्थ हो, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है, (ज्योतिः यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा) ज्ञान एवं आत्म ज्योति यज्ञ से समर्थ हो, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है, (स्वः यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा) हमारा सांसारिक सुख एवं स्वर्ग तथा मोक्ष-सुख समृद्ध हो, एतदर्थ यह आहुति है, (पृष्ठं यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा) पृष्ठ अर्थात् जीवन का आधार यज्ञ से समर्थ हो, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है, (यज्ञः यज्ञेन कल्पताम् स्वाहा) यज्ञ अर्थात् त्यागमय एवं कल्याणकारी श्रेष्ठ कर्म यज्ञ से समर्थ हों, एतदर्थ यह आहुति समर्पित है।

१४२. यामाहुतिं प्रथमामथर्वा

या जाता या हव्यमकृणोज्जातवेदाः ।

तां त एतां प्रथमो जोहवीमि

ताभिष्टुप्तो वहतु हव्यमग्निरग्नये स्वाहा ।।

अथर्व. १९ । ४ । १

(याम् आहुति प्रथमाम् अथर्वा) अचल, ध्रुव परमात्मा ने जिस अग्नि को उत्पन्न करके उसमें प्रथम आहुति दी, (या जाता) जो इस प्रकार उत्पन्न हुयी (या जातवेदः हव्यम् अकृणोत्) और जिस जातवेद अग्नि ने हव्य को स्वीकार किया, (तां ते) उस तुझे (एताम्) अपनी इस आहुति को (प्रथमः जोहवीमि) सर्व प्रथम समर्पित करता हूं । (ताभिः स्तुप्तो स्तुतो) उन मेरी आहुतियों से प्रशंसित एवं स्तुत होकर (अग्निः) अग्नि (हव्यम् वहतु) मेरी हवि को प्राप्त करे, स्वीकार करे । (अग्नये स्वाहा) मधुर वचनों के साथ यह आहुति अग्नि के लिये समर्पित है ।

अथर्वा थर्वतिश्चरतिकर्मा तत्प्रतिषेधः (निरु. ११ । २ । १९) अचल, ध्रुव । जातवेदः जातविद्यो वा जात प्रज्ञानः (नि. ७ । ५ । १५)

१४३. ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवो मिताः ।

अध्वर्यु ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणोन्तर्हितं हविः (स्वाहा) ।।

अथर्व. १९ । ४२ । १

(ब्रह्म होता) ब्रह्म ही होता अर्थात् यज्ञ सम्पन्न करने वाला ऋत्विक् है, (ब्रह्म एव इदं सर्वं । यह समस्त संसार ब्रह्म ही है— मुण्डकोपनिषद्) (ब्रह्म यज्ञाः) ब्रह्म ही यज्ञ है (ब्रह्मणा स्वरवः मिताः) ब्रह्म के द्वारा ही स्वरों को मापा गया है, निर्धारित किया गया है अर्थात् ब्रह्म से ही स्वरों की उत्पत्ति हुई है, (अध्वर्युः ब्रह्मणः जातः) अध्वर्यु भी ब्रह्म से ही उत्पन्न हुआ है (ब्रह्मणः अन्तर्हितं हविः) यज्ञ में समर्पित की गयी घृत, सोम, चरु, पुरोडाश आदि हवियाँ सभी ब्रह्म में ही अवस्थित होती हैं, ब्रह्म को ही प्राप्त होती हैं, (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति ब्रह्म को समर्पित है ।

इसी भाव को गीता. ४ । २४ में निम्न प्रकार व्यक्त किया गया है ।

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम् ।
ब्रह्मैव तेन गन्तव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना ।।

१४४.ब्रह्म स्रुचो घृतवतीर्ब्रह्मणा वेदिरुद्धिता ।

ब्रह्म यज्ञस्य तत्त्वं च ऋत्विजो ये हविष्कृतः । शमिताय स्वाहा ।

अथर्व. १९ । ४२ । २

(घृतवती: स्रुच: ब्रह्म) घृत से परिपूर्ण स्रुचा ब्रह्म है, (ब्रह्मणा वेदि: उद्धिता) ब्रह्म के द्वारा ही यज्ञ वेदि का निर्माण किया गया है (ब्रह्म यज्ञस्य तत्वं) ब्रह्म ही यज्ञ का तत्व है [च] तथा [ये हविष्कृत: ऋत्विज:] जो हवि तैयार करने वाले ऋत्विज है, वे भी ब्रह्म ही हैं [शमिताय शं इताय] शान्ति एवं सुख की प्राप्ति के लिये [स्वाहा] यह आहुति ब्रह्म को समर्पित है।

१४५. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह। अग्निर्मा तत्र

नयत्वग्निर्मेधां दधातु मे। अग्नये स्वाहा।

अथर्व. १९। ४३। १

[दीक्षया तपसा सह] यम नियमों का पालन करने वाले तथा तपश्चर्या के साथ जीवन व्यतीत करने वाले [ब्रह्मविद:] ब्रह्म वेत्ता तपस्वी (यत्र यान्ति) जहाँ जाते हैं, जिस ब्रह्म लोक को प्राप्त करते हैं, (अग्नि: मा तत्र नयतु) अग्नि मुझे वहाँ ले जाय, (अग्नि: मेधां दधातु मे) तथा अग्नि मुझे मेधा अर्थात् श्रेष्ठ कल्याणकारी बुद्धि प्रदान करे। (अग्नये स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति अग्नि देव को समर्पित है।

सभी देवता पुरुष की देह में भिन्न भिन्न रूपों में वास करते हैं। अग्नि अनेक रूपों में शरीर में रहता है। अग्नि से हमें मेधा एवं जीवनी शक्ति प्राप्त होती है।

१४६. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।

वायुर्मा तत्र नयतु वायुः प्राणान् दधातु मे । वायवे स्वाहा ।।

अथर्व. १९ । ४३ । २

जहाँ दीक्षा एवं तप के साथ जीवन व्यतीत करने वाले ब्रह्मज्ञानी तपस्वी जाते हैं, (वायुः मा तत्र नयतु) वायु मुझे उस श्रेष्ठ ब्रह्मलोक को ले जाय, [वायुः प्राणान् दधातु मे] वायु मेरे अन्दर प्राणों को धारण करे, मेरे प्राणों को पुष्ट करे । [वायवे स्वाहा] सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति वायु देव के लिये समर्पित है ।

वायु प्राण के रूप में शरीर में रहता है । इस प्रकार शरीर में वायु ही प्राण को धारण करता है । सैषानस्तमिता देवता यद् वायुः । वायु कभी अस्त न होने वाला देवता है । इसी प्रकार शरीर में प्राण कभी अपना कार्य बन्द नहीं करते ।

१४७. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।

सूर्यो मा तत्र नयतु चक्षुः सूर्यो दधातु मे । सूर्याय स्वाहा ।

अथर्व. १९ । ४३ । ३

जहाँ दीक्षा एवं तप के साथ जीवन व्यतीत करने वाले ब्रह्मज्ञानी तपस्वी जाते हैं, [सूर्यः मा तत्र नयतु] सूर्य मुझे वहाँ ले जाय । [सूर्यः चक्षुः दधातु मे] सूर्य मेरे अन्दर चक्षु अर्थात् नेत्रों की ज्योति धारण करे । [सूर्याय स्वाहा] सूर्य के लिये यह आहुति समर्पित है ।

सूर्य पुरुष देह में चक्षु के रूप में वास करता है। सूर्य से हमें नेत्रों की ज्योति प्राप्त होती है।

१४८. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।

चन्द्रो मा तत्र नयतु मनश्चन्द्रो दधातु मे। चन्द्राय स्वाहा॥

अथर्व. १९। ४३। ४

जहाँ दीक्षा एवं तपस्या के साथ जीवन व्यतीत करने वाले ब्रह्मज्ञानी जाते हैं, [चन्द्रः मा तत्र नयतु] चन्द्रमा मुझे वहाँ ले जाय, [मनः चन्द्रः दधातु मे] चन्द्रमा मुझमें मन को धारण करे। [चन्द्राय स्वाहा] सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति चन्द्रमा के लिये समर्पित है।

चन्द्रमा पुरुष शरीर में मन के रूप में स्थित रहता है। चन्द्रमा से ही हमें मन प्राप्त होता है।

१४९. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।

सोमो मा तत्र नयतु पयः सोमो दधातु मे। सोमाय स्वाहा।

अथर्व. १९। ४३। ५

जहाँ दीक्षा एवं तपस्या के साथ जीवन व्यतीत करने वाले ब्रह्मज्ञानी जाते हैं, (सोमः मा तत्र नयतु) सोम मुझे वहाँ ले जाय, (पयः सोमः दधातु मे) सोम मुझे पय अर्थात् अन्न ओषधियों एवं फलों आदि का रस उपलब्ध कराये। (सोमाय स्वाहा) मधुर वचनों के साथ यह आहुति सोम के लिये समर्पित है।

पयः अन्न नाम। निघण्टु २। ७

(सोमो वा ओषधीनां राजा-तैत्तिरीय ब्रा. ३।९।१७।१
सोम ओषधियों का राजा है, अतएव उससे पुष्टि कारक रसों की प्रार्थना की गयी है। कुछ आधुनिक विद्वानों ने पयः का अर्थ वीर्य किया है। यह भी उचित प्रतीत होता है।

१५०. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।

इन्द्रो मा तत्र नयतु बलमिन्द्रो दधातु मे। इन्द्राय स्वाहा।

अथर्व. १९।४३।६

जहाँ दीक्षा एवं तप के साथ जीवन व्यतीत करने वाले ब्रह्मज्ञानी जाते है, (इन्द्रः मा तत्र नयतु) इन्द्र मुझे वहाँ ले जायें। (बलम् इन्द्रः दधातु मे) इन्द्र मुझमें बल धारण करें, मुझे शारीरिक मानसिक एवं आध्यात्मिक बल दें। (इन्द्राय स्वाहा) मधुर वचनों के साथ यह आहुति इन्द्र के लिये समर्पित है।

१५१. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह।

आपो मा तत्र नयन्त्वमृतं मोप तिष्ठतु। अद्भ्यः स्वाहा।

अथर्व. १९।४३।७

जहाँ दीक्षा एवं तप के साथ जीवन व्यतीत करने वाले ब्रह्मज्ञानी जाते हैं, (आपः मा तत्र नयतु) जल मुझे वहाँ ले जाय। (अमृतम् मा उप तिष्ठतु) मुझे अमृत प्राप्त हो। (अद्भ्यः स्वाहा) मधुर वचनों के साथ यह आहुति जलों के लिये समर्पित है।

अमृतं वा आपः—जल अमृत हैं—तैत्ति. आरण्यक १।२६।७

१५२. यत्र ब्रह्मविदो यान्ति दीक्षया तपसा सह ।

ब्रह्मा मा तत्र नयतु ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे । ब्रह्मणे स्वाहा ।

अथर्व. १९ । ४३ । ८

जहाँ दीक्षा एवं तप के साथ जीवन व्यतीत करने वाले ब्रह्मज्ञानी जाते हैं, (ब्रह्मा मा तत्र नयतु) ब्रह्मा अर्थात् परमात्मा मुझे वहाँ ले जायें, (ब्रह्मा ब्रह्म दधातु मे) ब्रह्मा मुझमें वेद ज्ञान धारण करें, मुझे ब्रह्म ज्ञान दें। (ब्रह्मणे स्वाहा) मधुर वचनों के साथ यह आहुति ब्रह्मा के लिये समर्पित है।

ब्रह्मा का प्रसिद्ध अर्थ तो जगत्स्रष्टा अर्थात् परमात्मा है किन्तु ब्रह्मा का अर्थ चारों वेदों का विद्वान भी होता है।

ब्रह्मा, विष्णु, महेश कोई अलग अलग देवता नहीं हैं, वास्तव में ये सब एक ही परमात्मा के भिन्न भिन्न नाम हैं, जो उसके भिन्न भिन्न गुणों का वर्णन करते हैं।

एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति । अथर्व. ९ । १० । २८

यह उल्लेखनीय है कि उपरिलिखित आठ मन्त्रों में प्रयुक्त शब्द अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, सोम, इन्द्र, आपः तथा ब्रह्मा, सभी परमात्मा के भी नाम हैं। और इनसे परमात्मा का बोध होता है, जैसा कि स्वयं वेद में ही कहा गया है।

तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।

तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ।।

यजु. ३२ । १

(तत् एव अग्निः) वह ही अग्नि, (तत् आदित्यः) वह ही आदित्य, (तत् वायुः) वह ही वायु, (तत् उ चन्द्रमाः) वह ही चन्द्रमा, (तत् एव शुक्र) वह ही शुक्र, (तत् ब्रह्म) वह ही ब्रह्म, (ता आपः) वह ही जल तथा (स प्रजापतिः) वह ही प्रजापति है।

१५३. विश्वो देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् ।

विश्वो राय इषुध्यति द्युम्नं वृणीत पुष्यसे स्वाहा ।

यजु. ४ । ८, ११ । ६७, २२ । २१

(विश्वः मर्तः) समस्त मनुष्य [नेतुः देवस्य] सबको उत्पन्न करने वाले तथा प्रेरणा देने वाले सबके नेता, सबके मार्ग दर्शक जिस सविता देव की [सख्यम् वुरीत वृणीत] मित्रता की कामना करते हैं, [विश्वः रायो इषुध्यति] जिससे समस्त मनुष्य धन एवं ऐश्वर्य की कामना करते हैं, प्रार्थना करते हैं [पुष्यसे द्युम्नं वृणीत] तथा अपने परिवार के पालन पोषण एवं पुष्टि के लिये तेजस्विता एवं यश देने वाले अन्न की प्रार्थना करते हैं, उस सविता देव के लिये (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति समर्पित है।

१५४. धाता रातिः सवितेदं जुषन्तां प्रजापतिर्निधिपा देवो अग्निः ।

त्वष्टा विष्णुः प्रजया सᳬ रराणा यजमानाय द्रविणं दधात

स्वाहा ।

यजु. ८ । १७

(धाता रातिः) दान देने वाले धाता, (सविता) सबको उत्पन्न करने वाले सविता (प्रजापतिः निधिपाः) समस्त निधियों का पालन करने वाले प्रजापति [देवः अग्निः] देदीप्यमान अग्नि, [त्वष्टा विष्णुः] निर्माण करने वाले त्वष्टा तथा सर्वव्यापक विष्णु [इदं जुषन्तां] हमारी इस हवि को स्वीकार करें, इसका प्रीति पूर्वक सेवन करें तथा [प्रजया संरराणाः] प्रजा के साथ रमण करते हुये, उसे सुखी करते हुये, [यजमानाय द्रविणं दधात दधतु] यजमान को धन प्रदान करें [स्वाहा] सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति इन देवों को समर्पित है।

१५५. सोमꣳ राजानमवसे ऽग्निमन्वारभामहे।

आदित्यान्विष्णुꣳ सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिꣳ स्वाहा।

ऋग्. १० । १४१ । ३ (पाठभेद) यजु. ९ । २६
साम. पूर्वा. क्र. सं. (९१) अथर्व. ३ । २० । ४

हम (राजानं सोमं) राजा सोम (अग्निम् आदित्यान् विष्णुं सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम्) अग्नि, बारह आदित्यों, विष्णु, सूर्य, ब्रह्मा तथा बृहस्पति का (अवसे अन्वारभामहे) अपनी रक्षा के लिये आह्वान करते हैं। (स्वाहा) मधुर वचनों के साथ यह आहुति इन देवों के लिये समर्पित है।

१५६. अर्यमणं बृहस्पतिमिन्द्रं दानाय चोदय ।

वाचं विष्णुꣳ सरस्वतीꣳ सवितारं च वाजिनꣳ स्वाहा ।

ऋग्. १० । १४१ । ५ (पाठभेद) यजु. ९ । २७
अथर्व. ३ । २० । ७ (पाठभेद)

हे प्रभो ! आप (अर्यमणं बृहस्पतिम् इन्द्रम् वाचं सरस्वतीं विष्णु सवितारं वाजिनं च) अर्यमा, बृहस्पति, इन्द्र, वाणी की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती, विष्णु, तथा बलशाली एवं अन्नों से सम्पन्न सविता देव को (दानाय चोदय) हमें दान देने के लिये प्रेरित कीजिये। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति आपको समर्पित है।

१५७. अग्ने अच्छा वदेह नः प्रति नः सुमना भव ।

प्र नो यच्छ सहस्रजित्त्वꣳ हि धनदा असि स्वाहा ।

ऋग्. १० । १४१ । १ (पाठभेद) यजु. ९ । २८
अथर्व. ३ । २० । २ [पाठभेद]

(अग्ने) हे अग्ने ! (इह नः अच्छावद) इस यज्ञ में हमें आशीर्वाद दीजिये, [नः प्रति सुमना भव] तथा हमारे प्रति उत्तम मन वाले, कृपा पूर्ण हृदय वाले होइये । [सहस्रजित्] हे सहस्रों को जीतने वाले ! [हि त्वम् धनदाः असि] यतः [क्योंकि] आप धन देने वाले है, अतः [नः प्रयच्छ] हमें भरपूर धन दीजिये । (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति आपके लिये समर्पित है ।

१५८. प्र नो यच्छत्वर्यमा प्र पूषा प्र बृहस्पतिः ।

प्र वाग्देवी ददातु नः स्वाहा ।

ऋग्. १० । १४१ । २ (पाठभेद) यजु. ९ । २९
अथर्व. ३ । २० । ३ (पाठभेद)

(अर्यमा नः प्रयच्छतु) अर्यमा हमें धन आदि दे, (पूषा प्र) पूषा हमें सुख एवं आरोग्यता आदि दे, (प्र बृहस्पतिः) बृहस्पति हमें ज्ञान एवं मेधा प्रदान करें तथा (वाग्देवी नः प्र ददातु) वाणी की अधिष्ठात्री सरस्वती हमें ओजस्वी वाणी तथा विद्या एवं बुद्धि प्रदान करें । (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति इन देवों के लिये समर्पित है ।

१५९. ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः ।

वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे ।।

अथर्व. १ । १ । १

(ये त्रिषप्ताः) जो तीन गुणा सात अर्थात् २१ तत्व, पदार्थ अथवा शक्तियाँ (विश्वा रूपाणि बिभ्रतः) चराचर जगत के समस्त रूपों को धारण किये हुये (विचरन्ति) विचरण करते हैं, सब ओर प्राप्त होते हैं, (वाचस्पतिः) वाणी के स्वामी परमात्मा अथवा प्रजापति (तेषां बला) उनके बलों को, सामर्थ्यों को (मे तन्वः) मेरे शरीर में (अद्य दधातु) आज धारण करें, मुझे प्रदान करें ।

प्रजापतिर्वै वाचस्पतिः । प्रजापति ही वाचस्पति है । शतपथ

मन्त्र में उल्लिखित २१ को संख्या के अनेक रूप हैं।

(१) तैत्तिरीय संहिता ७।३।१०।५ में उल्लिखित इक्कीस की संख्या में बारह मास, पाँच ऋतुयें, तीन लोक तथा आदित्य, आते है, जो स्थान एवं काल के प्रमुख अवयवों के रूप में संसार के चक्र को चलाते है।

(२) इसी प्रकार समस्त प्राणियों के शरीरों को धारण करने वाले, जीवन के निम्नांकित प्रमुख अवयव भी २१ हैं।

५ महाभूत
५ प्राण
५ ज्ञानेन्द्रियाँ
५ कर्मेन्द्रियाँ
१ अन्तःकरण

———
२१
———

(३) वाणी परक अर्थ—एक वचन, द्विवचन तथा बहुवचन से गुणित होकर सात विभक्तियाँ शब्दों के २१ स्वरूपों को धारण करती हैं। वाणी के यही २१ रूप सर्वत्र विचरण करते हैं, सब ओर प्राप्त होते हैं। (वाचस्पतिः) वाणी के स्वामी आज वाणी के इन २१ रूपों से प्राप्त होने वाले ज्ञान के सामर्थ्य को मेरे शरीर में धारण करें, मुझे प्रदान करें।

(४) सृष्टि परक अर्थ – (ये त्रिषप्ताः) पञ्च महाभूत, तन्मात्रायें तथा अहंकार ये सात प्रमुख तत्व, सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण,

इन तीन गुणों से संलग्न होने के कारण २१ प्रकार के बन कर, जगत् के सम्पूर्ण पदार्थों का रूप धारण करते हुये सर्वत्र विचरण करते हैं, सर्वत्र फैले हुये हैं। वाणी के स्वामी वाचस्पति अथवा प्रजापति इनके बलों को आज मेरे शरीर में धारण करें।

(५) विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि सृष्टि के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण ये २१ पदार्थ निम्नाङ्कित हैं।

५ महाभूत –(आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथिवी)
५ तन्मात्रायें–(शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध)
१ प्राण –(प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान)
१ इन्द्रियाँ –(पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ)
१ अन्तःकरण–(मन, बुद्धि, चित्त तथा अहंकार)
३ लोक –(पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक)
१ काल –(भूत, भविष्य तथा वर्तमान)
१ आदित्य
१ चन्द्रमा
१ नक्षत्र
१ इन्द्र अथवा विद्युत

योग = २१

---

१६०. उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते

योनिः सूर्यस्ते महिमा । यस्ते ऽहन्त्संवत्सरे महिमा संबभूव

यस्ते वायावन्तरिक्षे महिमा संबभूव यस्ते दिवि सूर्ये

महिमा संबभूव तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये स्वाहा देवेभ्यः ।।

यजु. २३ । २

(उपयाम गृहीतः असि) हे प्रभो ! आप यम नियमों के साथ योगाभ्यास से प्राप्त होने योग्य हैं, (प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णामि) प्रजाओं की रक्षा करने के लिये, सेवा प्रार्थना एवं उपासना से प्रसन्न हुये आपको मैं प्राप्त करता हूँ, (एषः ते योनिः) मेरा यह हृदय एवं यह संसार आपका निवास स्थान है, आप इसमें रमण करते हैं,(सूर्यः ते महिमा) सूर्य आपकी महिमा स्वरूप है,उससे आपकी महिमा प्रकट होती है, (यः ते अहन् संवत्सरे महिमा संबभूव) आपकी जो महिमा दिन में तथा वर्ष में सम्यक् रूप से प्रकट हुयी है, (यः ते वायौ अन्तरिक्षे महिमा संबभूव) आपकी जो महिमा वायु तथा अन्तरिक्ष में सम्यक् रूप से प्रकट हुयी है, (यः ते दिवि सूर्ये महिमा संबभूव) आपकी जो महिमा द्युलोक तथा सूर्य में सम्यक् रूप से प्रकट हुयी है,(तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा)आपकी उस महिमा के लिये,महिमा मंडित प्रजापति स्वरूप के लिये तथा महिमा शाली देवों के लिये (स्वाहा) यह आहुति समर्पित है।

१६१. उपयामगृहीतोऽसि प्रजापतये त्वा जुष्टं गृह्णाम्येष ते

योनिश्चन्द्रमास्ते महिमा। यस्ते रात्रौ संवत्सरे महिमा

सम्बभूव यस्ते पृथिव्यामग्नौ महिमा सम्बभूव यस्ते

नक्षत्रेषु चन्द्रमसि महिमा सम्बभूव तस्मै ते महिम्ने

प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा ॥

यजु. २३ । ४

(उपयाम गृहीतः असि) हे प्रभो ! आप यम नियमों के साथ योगाभ्यास से प्राप्त किये जाने योग्य हैं (प्रजापतये) प्रजा की रक्षा के लिये (त्वा जुष्टं) सेवा द्वारा प्रसन्न हुये आपको (गृह्णामि) ग्रहण करता हूँ, प्राप्त करता हूँ (एषः ते योनिः) यह संसार आपकी रमण स्थली है, (चन्द्रमाः ते महिमा) चन्द्रमा आपकी महिमा स्वरूप है, उससे आपकी महिमा प्रकट होती है, (यः ते रात्रौ संवत्सरे महिमा) आपकी जो महिमा रात्रि में तथा संवत्सर अर्थात् वर्ष में (संवभूव) सम्यक् रूप से प्रकट है, (यः ते पृथिव्याम् अग्नौ महिमा सम्बभूव) आपकी जो महिमा पृथिवी तथा अग्नि में भली प्रकार प्रकट है, (यः ते महिमा नक्षत्रेषु चन्द्रमसि सम्बभूव) आपकी जो महिमा नक्षत्रों तथा चन्द्रमा में सम्यक् रूप से प्रकट है, (तस्मै ते महिम्ने प्रजापतये देवेभ्यः स्वाहा) आपकी उस महिमा के लिये तथा

आपके महिमामंडित प्रजापति स्वरूप के लिये एवं महिमाशाली देवों के लिये [स्वाहा] (सु-आह सुहुतमस्तु) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति समर्पित है, यह भली प्रकार आहुत हो।

१६२. प्राणापानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा।

अथर्व. २।१६।१

(प्राणापानौ) हे प्राण और अपान ! (मृत्योः मा पातं) मुझे मृत्यु से बचाइये। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति आपके लिये समर्पित है।

१६३. द्यावापृथिवी उपश्रुत्या मा पातं स्वाहा।

अथर्व. २।१६।२

(द्यावापृथिवी) हे द्युलोक एवं पृथिवी लोक ! (उपश्रुत्या मा पातं) श्रवण शक्ति से मेरी रक्षा कीजिये।

१६४. सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा।

अथर्व. २।१६।३

हे सूर्य ! चक्षु अथवा दृष्टि शक्ति से मेरी रक्षा कीजिये।

१६५. अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा।

अथर्व. २।१६।४

हे वैश्वानर अग्ने ! (विश्वैः देवैः) समस्त देवों के साथ (मा पाहि) मेरी रक्षा कीजिये।

१६६. विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ।

अथर्व. २ । १६ । ५

हे विश्वम्भर ! हे जगत् का भरण पोषण करने वाले प्रभो ! (विश्वेन भरसा) सम्पूर्ण पोषण शक्ति से मेरी रक्षा कीजिये। परमात्मा के पास ही सम्पूर्ण पोषण शक्ति है अतः उसी से इसकी प्रार्थना की गयी है ।

१६७. ओजोऽस्योजो मे दाः स्वाहा ।

अथर्व. २ । १७ । १

हे प्रभो ! आप ओजस्वरूप हैं, ओज अर्थात् कान्ति एवं सामर्थ्य से सम्पन्न हैं । (ओजः मे दाः) मुझे ओज दीजिये ।

ओजः बल नाम । निघण्टु २ । ९

१६८. सहोऽसि सहो मे दाः स्वाहा ।

अथर्व. २ । १७ । २

हे प्रभो ! [सहः असि] आप शत्रुओं को परास्त करने वाले बल से सम्पन्न हैं । (मे सहः दाः) मुझे शत्रुओं को परास्त करने का बल दीजिये ।

सहः बलनाम । निघण्टु २ । ९

१६९. बलमसि बलं मे दाः स्वाहा ।

अथर्व. २ । १७ । ३

हे प्रभो आप बल स्वरूप हैं, समस्त प्रकार के बलों से सम्पन्न हैं, मुझे सब प्रकार का बल दीजिये ।

१७०. आयुरस्यायुर्मे दाः स्वाहा ।

अथर्व. २ । १७ । ४

हे प्रभो ! आप आयु अथवा जीवन शक्ति हैं, मुझे आयु दीजिये ।

१७१. श्रोत्रमसि श्रोत्रं मे दाः स्वाहा ।

अथर्व. २ । १७ । ५

हे प्रभो ! आप श्रवण शक्ति हैं, मुझे श्रवण शक्ति दीजिये ।

१७२. चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः स्वाहा ।

अथर्व. २ । १७ । ६

हे प्रभो ! आप चक्षु हैं, दृष्टि शक्ति हैं, मुझे दृष्टि शक्ति दीजिये ।

१७३. परिपाणमसि परिपाणं मे दाः स्वाहा ।

अथर्व. २ । १७ । ७

हे प्रभो ! आप सब प्रकार से रक्षा करने वाले हैं, मुझे सब प्रकार का संरक्षण एवं रक्षा करने की शक्ति दीजिये ।

१७४. अंहोमुचे प्रभरे मनीषामा सुत्राव्णे सुमतिमावृणानः ।

इदमिन्द्र प्रति हव्यं गृभाय सत्याः सन्तु यजमानस्य

कामाः (स्वाहा) ।।

अथर्व. १९ । ४२ । ३

(सुमतिम् आवृणानः) सुमति की इच्छा करता हुआ मैं (अंहोमुचे) पापों से मुक्त करने वाले, (सुत्राम्णे) परम रक्षक इन्द्र के प्रति (मनीषाम् आ प्रभरे) अपने मन की भावनायें, कामनायें एवं प्रार्थनायें प्रस्तुत करता हूँ, समर्पित करता हूँ। (इन्द्र) हे इन्द्र ! हे परम ऐश्वर्य सम्पन्न परमेश्वर ! (इदं हव्यं) मेरे द्वारा समर्पित इस हवि को, अथवा भक्ति पूर्वक की गयी इस प्रार्थना को (प्रति गृभाय) स्वीकार कीजिये। (सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः) हे प्रभो ! यज्ञ करने वाले की समस्त कामनायें सत्य हों, पूर्ण हों।

१७५. यत्काम कामयमाना इदं कृण्मसि ते हविः।

तन्नः सर्वं समृध्यतामथैतस्य हविषो वीहि स्वाहा ॥

अथर्व. १९। ५२। ५

(काम) हे काम ! (यत् कामयमानाः) जिस फल की कामना करते हुये (ते इद हविः कृण्मसि) हम आपके लिये यह हवि अर्पण करते हैं (तत् नः सर्वं समृध्यतां) वह सब भली प्रकार सिद्ध हो, हमारी वह कामना सब प्रकार से पूर्ण हो, (अथ एतस्यः हविषः वीहि) अतएव आप इस हवि का भक्षण कीजिये, इसे स्वीकार कीजिये। (स्वाहा सुहुतम् अस्तु) मधुर वचनों के साथ समर्पित यह आहुति भली प्रकार आहुत हो।

शतरुद्रिय होम

शतपथ ब्राह्मण ९ । १ । १ । ७ में कहा गया है कि इससे शतशीर्ष (सौ शिर वाले) रुद्र को शान्त किया, अतः इसका नाम शतशीर्ष रुद्र शमनीय शतशीर्ष रुद्र दमनीय पड़ा जिसे परोक्ष रूप से शतरुद्रिय कहते हैं क्योंकि देवों को परोक्ष प्रिय है। परोक्ष कामा हि देवाः।

यजुर्वेद अध्याय १६ के सभी ६६ मन्त्रों से सम्पूर्ण शतरुद्रिय होम सम्पन्न किया जाता है।

इस अध्याय के मन्त्रों में नमः नमः बार बार आता है। 'यज्ञो वै नमो'। निश्चय ही यज्ञ नमः है। यज्ञ के द्वारा ही नमस्कार करता है।

यजुर्वेद अध्याय १६ के प्रथम अनुवाक में १६ मन्त्र हैं। इनमें एक देवता का ही उल्लेख है। अतः एक रुद्र को ही इनसे प्रसन्न करता है।

शतरुद्रिय आहुतियाँ

उपरोक्तानुसार रुद्र को प्रसन्न करने वाले निम्नाङ्कित १६ मन्त्रों से शतरुद्रिय आहुतियाँ दी जानी चाहिये। ये आहुतियाँ जतिल (जंगली तिल), गवेधुका के सत्तू तथा अर्कपर्ण (आक के पत्ते) से दी जाती हैं।

वेदी के उत्तरार्ध में, उत्तराभिमुख होकर आहुति दी जाती है क्योंकि उसी दिशा में इस देव का घर है।

रुद्र–रुत् दुःखं द्रावयति रुद्रः। दुखों को दूर करने वाले भगवान रुद्र हैं।

अथवा, 'रु गतौ'। गति का अर्थ ज्ञान भी है अतः रुत् ज्ञानं राति ददाति रुद्रः अर्थात् ज्ञान देने वाले भगवान रुद्र हैं।

अथवा, [पापिनो रोदयति रुद्रः] पापियों को, दुष्टों को रुलाने वाले भगवान रुद्र हैं।

शरीर में स्थित दश प्राण एवं जीवात्मा रुद्र कहे जाते हैं क्योंकि शरीर से बाहर आने पर ये मृत व्यक्ति के प्रिय जनों को रुलाते हैं।

अग्निवायुसूर्या देवताः रुद्राणां प्रधानभूताः। बाह्य जगत में अग्नि, वायु तथा सूर्य देवता प्रमुख रुद्र हैं क्योंकि ये सब को सुख देते हैं तथा दुखों को दूर करते हैं और प्राणि मात्र के जीवन की रक्षा करते हैं।

१७६. नमस्ते रुद्र मन्यव उतो त इषवे नमः ।

बाहुभ्यामुत ते नमः (स्वाहा) ।।

यजु. १६ । १

(नमः ते रुद्र मन्यव) हे रुद्र ! आपके क्रोध को नमस्कार है, (उतो त इषवे नमः) तथा आपके बाणों के लिए मेरा नमस्कार है, [उत ते बाहुभ्याम नमः] तथा आपकी भुजाओं को मेरा नमस्कार है। निराकार परमात्मा का कैसा सुन्दर अलंकारिक चित्रण है यह !

१७७. या ते रुद्र शिवा तनूरघोरा ऽपापकाशिनी ।

तया नस्तन्वा शन्तमया गिरिशन्ताभिचाकशीहि (स्वाहा)।।

यजु. १६ । २

[गिरिशन्त रुद्र]हे पर्वत पर निवास करने वाले रुद्र ! [या ते] आपका जो [शिवा अघोरा अपापकाशिनी] कल्याणमय, मंगलमय, सौम्य, अक्रूर, निष्पाप तथा पापों का नाश करने वाला[तनूः]शरीर अथवा स्वरूप है, [तया शन्तमया तन्वा] अपने उस आनन्दमय तथा आनन्द दायक स्वरूप से [नः अभिचाकशीहि] हमें देखिये, हमारे ऊपर अपनी आनन्द दायक कृपा दृष्टि डालिये। गिरौ स्थितः शं सुखं तनोति विस्तारयति इति गिरिशन्तः ।

१७८. यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ।

शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिꣳसीः पुरुषं जगत् (स्वाहा)।।

यजु. १६ । ३

(गिरिशन्त) हे पर्वत पर निवास करने वाले अथवा मेघों से वृष्टि के द्वारा समस्त जगत् को सुख देने वाले, तथा (गिरित्र गिरि वाचि स्थितः) वाणी में स्थित अर्थात् वेद वाणी में स्थित होकर समस्त प्राणियों की ज्ञान द्वारा रक्षा करने वाले, हे रुद्र ! (यां इषुं अस्तवे हस्ते बिभर्षि) चलाने के लिये जो बाण आप अपने हाथ में धारण किये हुये हैं, (तां शिवां कुरु) उसे हमारे लिये कल्याणकारी कीजिये (मा हिंसीः पुरुषं जगत्) तथा मनुष्यों, पशुओं एवं अन्य प्राणियों को कष्ट मत दीजिये, उनका नाश मत कीजिये ।

१७९. शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छा वदामसि ।

यथा नः सर्वमिज्जगदयक्ष्मꣳ सुमना ऽअसत् (स्वाहा)।।

यजु. १६ । ४

(गिरिश) हे पर्वत वासी सुखदायक रुद्र ! अथवा, हे मेघ वृष्टि द्वारा सबको सुख देने वाले, प्रभो ! अथवा, हे वेद वाणी में निवास करने वाले सुखदायक प्रभो ! (शिवेन वचसा त्वा अच्छा वदामसि) हम सुन्दर मधुर वचनों से आपको अच्छा कहते हैं, आपकी स्तुति एवं प्रशंसा करते हैं (यथा नः सर्वं इत् जगत अयक्ष्मं सुमना असत्) ताकि आपकी कृपा से हमारा समस्त जगत् नीरोग एवं सुन्दर मन वाला अर्थात् सुखी समृद्ध एवं शुभ विचारों वाला हो ।

१८०. अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ।

अहींश्च सर्वाञ्जम्भयन्त्सर्वाश्च यातुधान्योऽधराचीः

परा सुव (स्वाहा) ॥

यजु. १६ । ५

(अधिवक्ता) अधिकार पूर्ण ढंग से कहने वाला ऐसा श्रेष्ठ आदरणीय वक्ता जिसके वचनों का सम्मान किया जाय, (प्रथमः दैव्यः भिषक् अधि अवोचत्) तथा सर्व श्रेष्ठ, दिव्य वैद्य रुद्र हमसे अधिकार पूर्वक कहता है,हमें आदेश देता है (सर्वान् अहीन् जम्भयन्) कि समस्त प्राणघाती सर्पों आदि दुष्ट जीवों का नाश करके (सर्वाः अधराचीः यातुधान्यः) हमें अधोगति की ओर ले जाने वाले समस्त नीच प्रवृत्ति के दुष्टों तथा दूसरों को यातना देने वाले, पीड़ा देने वाले राक्षसों अथवा रोग उत्पन्न करने वाले कीटाणुओं आदि को (परासुव) अपने से दूर कर दो ।

१८१. असौ यस्ताम्रो अरुण उत बभ्रुः सुमङ्गलः ।

ये चैनꣳ रुद्रा अभितो दिक्षु श्रिताः सहस्रशोऽवैषाꣳ

हेड ईमहे (स्वाहा) ॥

यजु. १६ । ६

(असौ यः ताम्रः) जो वह आदित्य रूपी रुद्र उदय काल में ताम्रवर्ण का तथा (अरुण उत बभ्रु) अस्त काल में अरुण अर्थात् लाल अथवा रक्तवर्ण का एवं शेष दिवस में बभ्रु अर्थात् स्वर्ण अथवा सूर्य की धूप के समान रंग धारण करने वाला (सुमङ्गलः) तथा समस्त संसार का श्रेष्ठ प्रकार से कल्याण करने वाला है (ये च एनं सहस्रशः रुद्राः रश्मयः) तथा इसके जो असंख्य किरणें रूपी रुद्रगण (अभितः दिक्षु श्रिताः) चारों ओर दिशाओं में स्थित हैं, फैले हुये हैं (एषां हेडः अव ईमहे) इनके क्रोध से रक्षा के लिये हम प्रार्थना करते हैं।

तात्पर्य यह है कि हम सूर्य के विनाशकारी ताप से बचें तथा सूर्य की गुणकारी एवं शक्तिशाली किरणें विभिन्न रोगों तथा अधिक शीत से हमारी रक्षा करें। जिस प्रकार शरीर में प्राण एवं आत्मा रुद्र है, उसी प्रकार बाह्य जगत में अग्नि वायु एवं सूर्य रुद्र हैं।

१८२. असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहितः।

उतैनं गोपा ऽअदृश्रन्नदृश्रन्नुदहार्य्यः स दृष्टो मृडयाति

नः (स्वाहा) ।।

यजु. १६ । ७

(यः असौ नीलग्रीवः विलोहितः अवसर्पति) जो यह नीली ग्रीवा तथा (उदय काल में) विशेष लोहित अर्थात् विशेष रक्त वर्ण का आदित्य रूपी रुद्र उदयाचल से अस्ताचल की ओर निरन्तर धीरे धीरे गमन करता हुआ दिखायी देता है, (एनं गोपा अदृश्रन्) इसे गोपाल अर्थात् गौवें चराने वाले [illegible] (उत) तथा (उदहार्यः अदृश्रन्) (उदकं हरन्ति ता उदहार्यः) जल लाने

वाली स्त्रियाँ देखती हैं, (तात्पर्य यह है कि बाहर कार्य करने वाले पुरुष एवं स्त्रियाँ इस सूर्य रूपी रुद्र को देखती हैं।) (सः दृष्टः मृडयाति नः) वह सूर्य देखा जाने पर हमें सुखी करता है। सूर्य का दर्शन करने से तथा सूर्य के प्रकाश में रहने से हम सुखी एवं नीरोग होते हैं।

सूर्य को नीलग्रीव कहने का आधार संभवतः यह काव्यात्मक कल्पना है कि सूर्य मण्डल सूर्य देव का मुख है तथा नीला आकाश जिसके ऊपर उनका सुन्दर मुख सुशोभित रहता है, उनकी नीली ग्रीवा है।

१८३. नमोऽस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे।

अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः (स्वाहा) ॥

यजु. १६। ८

(नमः अस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे) आकाश रूपी नीली ग्रीवा तथा असंख्य किरणों रूपी नेत्रों वाले एवं समस्त संसार में जीवनी शक्ति एवं सुख का सञ्चार करने वाले वसुधा को वृष्टि द्वारा सींचने वाले आदित्य रूपी रुद्र को नमस्कार है, प्रणाम है। (अथो ये अस्य सत्वानः) तथा इसकी जो सत्वरूपी जीवन एवं प्रकाश दायिनी किरणें हैं (अहं तेभ्यः अकरम् नमः) मैं उन्हें भी प्रणाम करता हूँ।

अथवा, (नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय) नीली ग्रीवा तथा सहस्रों नेत्रों वाले एवं (मीढुषे) पूर्ण कामनाओं की वर्षा से सुख का संचार करने वाले अथवा वृष्टि से वसुधा को सींचने वाले रुद्र को (नमः अस्तु)

नमस्कार हो। (अथो ये अस्य सत्वान:) तथा इसके जो सत्वगुण सम्पन्न पराक्रमी वीर हैं, रुद्र गण हैं, (अहं तेभ्य: नम: अकरम्) मैं उन्हें भी प्रणाम करता हूँ।

१८४. प्रमुञ्च धन्वनस्त्वमुभयोरार्त्न्योर्ज्याम्।

याश्च ते हस्त इषव: परा ता भगवो वप (स्वाहा)॥

यजु. १६। ९

(भगव:) ऐश्वर्य सम्पन्न भगवान रुद्र! (त्वम् धन्वन: उभयो: आर्त्न्यो: ज्यां प्रमुञ्च) आप धनुष के दोनों सिरों से प्रत्यञ्चा को उतार दीजिये (या: च ते हस्ते इषव: ता: परावप) तथा आपके हाथ में जो बाण हैं, उसे दूर रख दीजिये। यह कैसी सुन्दर अलंकारिक प्रार्थना है कि भगवान अपने धनुष की डोरी उतार दें तथा बाण अलग रख दें अर्थात् हमें किसी प्रकार का कष्ट अथवा दु:ख न दें। इसीलिये प्रथम मन्त्र में भगवान रुद्र के क्रोध, उनके बाण तथा उनकी भुजाओं को प्रणाम किया गया था ताकि उनका क्रोध शान्त हो सके और उनकी कृपा हमें प्राप्त हो सके।

जब मनुष्य पर चारों ओर से विपत्तियाँ आती हैं, और उसे असफलताओं तथा विविध प्रकार के दुर्भाग्य एवं दुर्गति का सामना करना पड़ता है, तब इन मन्त्रों की सार्थकता एवं महत्ता स्वयं प्रत्यक्ष हो जाती है। इस युग में तो मनुष्य भगवान की कृपा अथवा उसके क्रोध का अर्थ ही नहीं समझता बल्कि उन्हें हास्यास्पद समझता है।

अलंकारिक ढंग से की गयी ऐसी सुन्दर एवं वास्तविक जीवन से संबन्धित प्रार्थनायें वेद से अन्यत्र कहीं उपलब्ध नहीं हो सकतीं।

१८५. विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाँ२ उत ।

अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः (स्वाहा) ।।

यजु. १६ । १०

(कपर्दिनः धनुः विज्यं) जटाधारी रुद्र का धनुष प्रत्यञ्चा रहित हो (उत) तथा (बाणवान् विशल्यः) उनके तूणीर बाणों से शून्य हों। (याः अस्य इषवः अनेशन्) जो उनके बाण हैं, वह हमें दिखायी न पड़ें, नष्ट हो जायं (अस्य निषङ्गधिः आभुः) तथा उनके खड्ग रखने का कोश रिक्त हो जाय।

तात्पर्य यह है कि भगवान हमारे प्रति क्रोध करके किसी प्रकार का दण्ड न दें और उन्हें अपने अस्त्र शस्त्र प्रयोग करने की आवश्यकता ही न पड़े। यदि रुद्र का अर्थ मनुष्यों में वीर सेनापति अथवा शक्तिशाली राजा माना जाय तो मन्त्र का अर्थ निःशस्त्रीकरण होगा क्योंकि सार्वभौमिक शान्ति की स्थापना के लिये समस्त विश्व में शस्त्रास्त्रों को समाप्त किया जाना आवश्यक है। निःशस्त्रीकरण के लिये निःसन्देह विश्व की यह सर्व प्रथम तथा सर्वश्रेष्ठ प्रार्थना है।

स्वामी दयानन्द जी ने इस मन्त्र का अर्थ, ऊपर दिये हुये अर्थ के बिल्कुल विपरीत निम्न प्रकार लिखा है।

हे पुरुषो ! इस जटाजूट धारण करने वाले सेनापति का (धनुः विज्यम्) धनुष प्रत्यञ्चा रहित न हो तथा यह(विशल्यः)बाण के अग्र भाग से रहित और (आभुः) आयुधों से खाली न हो (उत अस्य निषङ्गधिः) तथा इसके शस्त्रास्त्रों का कोष खाली मत हो और यह (बाणवान्) बहुत बाणों से युक्त हो। (याः अस्य इषवः अनेशन्) जो इसके बाण नष्ट हो जायें, वे इसको तुम लोग नवीन दो।

१८६. या ते हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव ते धनुः ।

तयाऽस्मान्विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परि भुज (स्वाहा) ।।

यजु. १६ । ११

(मीढुष्टम) सुख का सिंचन करने वाले अत्यन्त पराक्रमी युवा रुद्र ! (या ते हेतिः) आपके हाथ में जो वज्र के समान अस्त्र है (हस्ते बभूव ते धनुः) तथा आपके हाथ में जो धनुष है, (तया अयक्ष्मया अस्मान् विश्वतः त्वम् परिभुज) उस अपराजित अथवा अमोघ अस्त्र से आप हमारी सब ओर से भली प्रकार रक्षा करें।

१८७. परि ते धन्वनो हेतिरस्मान्वृणक्तु विश्वतः ।

अथो य इषुधिस्तवारे अस्मन्निधेहि तम् (स्वाहा) ।।

यजु. १६ । १२

(ते धन्वनः हेतिः अस्मान् विश्वतः परिवृणक्तु) हे रुद्र ! आपके धनुष बाण तथा अन्य आयुध सब ओर से हमारा परित्याग करें, हमसे दूर रहें। (अथो यः तव इषुधिः) तथा आपका जो तूणीर है, (तं अस्मत् आरे निधेहि) उसे हमसे दूर स्थान में रखिये।

१८८. अवतत्य धनुष्ट्वꣳ सहस्राक्ष शतेषुधे ।

निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव (स्वाहा)।।

यजु. १६ । १३

(सहस्राक्ष शतेषुधे) सहस्रों नेत्रों तथा सैंकड़ों तूणीरों वाले हे रुद्र ! (अवतत्य धनुः त्वं) आप अपने धनुष की प्रत्यञ्चा उतार कर (शल्यानां मुखाः निशीर्य) तथा बाणों के मुखों अर्थात् उन पर लगे हुये फालों को निकाल कर (नः शिवः सुमनाः भव) हमारे लिये कल्याणकारी तथा सुन्दर कृपा पूर्ण मन वाले होइये।

१८९. नमस्त आयुधायानातताय धृष्णवे।

उभाभ्यामुत ते नमो बाहुभ्यां तव धन्वने (स्वाहा)।।

यजु. १६। १४

(त अनातताय आयुधाय नमः) हे रुद्र ! आपके धनुष पर न चढ़े हुये बाण के लिये नमस्कार है, (ते उभाभ्याम् बाहुभ्यां) आपकी दोनों बाहुओं के लिये (उत) तथा (तव धृष्णवे धन्वने नमः) शत्रु को पराजित करने में समर्थ आपके धनुष को नमस्कार है।

१९०. मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न

उक्षितम्। मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः

प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः (स्वाहा)।।

यजु. १६। १५

(रुद्र) हे रुद्र ! (मा नः महान्तम् उत मा नः अर्भकं वधीः) हमारे वृद्ध गुरुजनों तथा महान् पुरुषों को न मारिये तथा हमारे छोटे शिशुओं को न मारिये (मा नः उक्षन्तम् उत मा नः उक्षितम्) वीर्य सिंचन करने में समर्थ हमारे युवकों को तथा हमारे गर्भस्थ शिशुओं को मत मारिये (मा नः पितरं उत मातरं) हमारे पिता को तथा हमारी माता को मत मारिये (मा नः प्रियाः तन्वः रीरिषः) तथा हमारे अन्य प्रिय जनों के शरीरों को नष्ट न कीजिये, उन्हें न मारिये ।

१६१. मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो

अश्वेषु रीरिषः । मा नो वीरान् रुद्र भामिनो

वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे (स्वाहा) ।।

यजु. १६ । १६

(रुद्र) हे रुद्र ! (मा नः तोके तनये रीरिषः) हमारे पुत्र तथा पौत्र को अथवा हमारे शिशुओं एवं किशोरों को मत मारिये (मा नः आयुषि) हमारी आयु को नष्ट न कीजिये (मा नः गोषु मा नः अश्वेषु) हमारी गायों को मत मारिये, हमारे अश्वों को मत मारिये । (मा नः वीरान् भामिनः वधीः) शत्रुओं पर क्रोध करने वाले हमारे वीरों का हनन मत कीजिये (हविष्मन्तः सद इत् त्वा हवामहे) आपके लिये हवियुक्त होकर, हवि की आहुति देने वाले होकर हम सदा आपका ही आह्वान करते हैं, उपासना करते हैं, तथा आपकी शरण में आते हैं ।

१८२. श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः ।

तान् रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह (स्वाहा) ।।

ऋग्. १ । ४५ । २

(अग्ने) हे अग्ने ! (विचेतसः देवाः दाशुषे श्रुष्टीवानः हि) विशेष ज्ञान सम्पन्न देवगण दाता को, हवि अर्पण करने वाले यजमान को निश्चय ही उत्तम फल देने वाले होते हैं। (रोहिदश्व) रोहित वर्ण वाले वेग युक्त (गिर्वणः) तथा वाणियों से स्तुति योग्य हे अग्ने ! (तान् त्रयस्त्रिंशतम् आ वह) उन तेंतीस देवों को यहाँ यज्ञ में लाइये। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति अग्नि के लिये समर्पित है।

१८३. स इधानो वसुष्कविरग्निरीलेन्यो गिरा ।

रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि (स्वाहा) ।।

ऋग्. १ । ७९ । ५

(वसुः) सबके जीवन का आधार, सबको बसाने वाला (सः इधानः कविः अग्निः) वह प्रकाशमान् मेधावी अग्नि (गिरा ईडेन्यः) उत्तम वाणियों से स्तुति योग्य है। (पुरु अनीकं) हे अनेक ज्वालाओं वाले अग्ने ! (अस्मभ्यं रेवत् दीदिहि) हमें भरपूर धन देते हुये आप प्रज्वलित हों। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति अग्नि के लिये समर्पित है।

१९४. अग्निर्होता पुरोहितोऽध्वरस्य विचर्षणिः ।

स वेद यज्ञमानुषक् (स्वाहा) ।।

ऋग्. ३ । ११ । १

(होता पुरोहितः अध्वरस्य विचर्षणिः) देवों का बुलाने वाला, समस्त कार्यों में आगे रहने वाला तथा सबका हितकारी अथवा आहवनीय के रूप में पूर्व भाग में स्थित हिंसारहित यज्ञ का विशेष दृष्टा (सः अग्निः) वह अग्नि (आनुषक् यज्ञं वेद) यज्ञ को सम्पूर्ण रूप से जानता है। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति अग्नि के लिये समर्पित है। आनुषक् आसमन्तात् अनुषजति इति आनुषक् ।

१९५. प्रेद्धो अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या यविष्ठ ।

त्वां शश्वन्त उप यन्ति वाजाः (स्वाहा) ।।

ऋग्. ७ । १ । ३

(यविष्ठ अग्ने) हे तरुण बलवान अग्ने ! (प्र इद्धः प्रकर्षेण समिद्धः) अत्यन्त प्रदीप्त होकर (अजस्रया सूर्म्या) अजस्र शील ज्वालाओं से (नः पुरः दीदिहि) हमारे सम्मुख प्रकाशित होइये (त्वां शश्वन्तः वाजाः उपयन्ति) आपके पास बहुत से अन्न निरन्तर आते है। (स्वाहा) मधुर वचनों के साथ यह आहुति आपके लिये समर्पित है।

१९६. इमो अग्ने वीततमानि हव्याऽजस्रो वक्षि देवतातिमच्छ।

प्रति न ईं सुरभीणि व्यन्तु (स्वाहा) ॥

ऋग्. ७ । १ । १८

(अग्ने) हे अग्ने ! (अच्छ गच्छ) जाइये और (इमो वीततमानि) इन अत्यन्त प्रिय (हव्या) होम द्रव्यों को (देवताति अजस्रः वक्षि वह) देवताओं के समूह के पास निरन्तर पहुंचाइये। (नः ईम् सुरभीणि) हमारे ये सुगंधित हव्य पदार्थ (प्रति व्यन्तु) प्रत्येक देवता को प्रिय हों। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति देवों के लिये समर्पित है।

१९७. उदस्य शोचिरस्थादाजुह्वानस्य मीढुषः।

उद्धूमासो अरुषासो दिविस्पृशः समग्निमिन्धते नरः (स्वाहा)॥

ऋग्. ७ । १६ । ३

(आजुह्वानस्य) जिसमें आहुतियाँ दी जा रही हैं, ऐसे (मीढुषः) कामनाओं की वर्षा करने वाले (अस्य शोचिः उत् अस्थात) इस अग्नि की प्रदीप्त ज्वालायें ऊपर उठती हैं, (अरुषासः दिविस्पृशः धूमासः उत) तथा अरुण वर्ण की ज्वालायें एवं आकाश को स्पर्श करने वाले धूम ऊपर उठ रहे हैं, (अग्निं नरः स इन्धते) ऋत्विज लोग इस अग्नि को सम्यक् रूप से प्रदीप्त करते हैं। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति अग्नि के लिये समर्पित है।

१९८. घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह ।

अग्ने त्वं रक्षस्विनः (स्वाहा) ॥

ऋग्. १ । १२ । ५

(घृता हवन घृतेन आहूयमान) घृताहुतियों से (दीदिवः अग्ने) प्रदीप्त हे अग्ने ! (त्वं रक्षस्विनः) आप राक्षसी स्वभाव वाले (प्रति रिषतः दह स्म) हमारे प्रतिकूल, हमारे विरोधी हिंसक शत्रुओं को सम्पूर्ण रूप से भस्म कर दीजिये (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति अग्नि के लिये समर्पित है ।

१९९. स्वाहाग्नये वरुणाय स्वाहेन्द्राय मरुद्भ्यः ।

स्वाहा देवेभ्यो हविः ॥

ऋग्. ५ । ५ । ११

(स्वाहा अग्नये वरुणाय) अग्नि तथा वरुण के लिये यह आहुति समर्पित है, (स्वाहा इन्द्राय मरुद्भ्यः) इन्द्र तथा मरुतों के लिये यह आहुति समर्पित है, (स्वाहा देवेभ्यः हविः) देवों के लिये यह हवि समर्पित है ।

२००. स बोधि सूरिर्मघवा वसुपते वसुदावन् ।

युयोध्यस्मद् द्वेषांᳫंसि विश्वकर्मणे स्वाहा ।।

यजु. १२ । ४३

(वसुपते) हे धनपते ! (सः सूरिः मघवा) वह आप विद्वान्, धनवान् एवं ऐश्वर्यवान् हैं। (वसुदावन्) हे धनदाता (बोधि) हमारे अभिप्राय को जानिये (अस्मत् द्वेषांसि युयोधि) तथा शत्रुओं एवं दुर्भाग्यों को को हमसे दूर कीजिये। (विश्वकर्मणे स्वाहा) जगत्स्रष्टा तथा पालन कर्ता विश्वकर्मा के लिये यह आहुति सुन्दर वचनों के साथ समर्पित है।

२०१. उदेनमुत्तरं नयाग्ने घृतेनाहुत ।

समेनं वर्चसा सृज प्रजया च बहु कृधि (स्वाहा) ।।

यजु. १७ । ५० (पाठभेद) अथर्व. ६ । ५ । १

(घृतेन आहुत अग्ने) घृताहुतियों से तृप्त हे अग्ने ! (एनं उत्तरम् उत् नय) इस यजमान को, यज्ञकर्ता को सर्वोच्च स्थान प्राप्त कराइये तथा उत्कृष्ट बनाइये। (एनं वर्चसा संसृज) इसे तेज से सम्पन्न कीजिये (च) तथा (प्रजया बहु कृधि) पुत्र पौत्र आदि से समृद्ध कीजिये।

२०२. इन्द्रेमं प्रतरं कृधि सजातानामसद् वशी ।

रायस्पोषेण सं सृज जीवातवे जरसे नय (स्वाहा) ॥

यजु. १७ । ५१ (पाठभेद)   अथर्व. ६ । ५ । २

(इन्द्र) हे इन्द्र ! (इमं) इस यजमान को (प्रतरं प्रवृद्धतर कृधि) अत्यन्त समृद्ध कीजिये (सजातानाम् वशी असत्) जिससे यह अपने सजातीयों में, बन्धु बान्धवों में सबको अपने वश में रखने वाला तथा स्वयं स्वतन्त्र हो । (रायः पोषेण सं सृज) इसे धन, ऐश्वर्य एवं सब प्रकार की पुष्टि से संयुक्त कीजिये (जीवातवे जरसे नय) तथा जीवित रहने के लिये इसे वृद्धावस्था तक ले जाइये, दीर्घायु कीजिये ।

२०३. यस्य कृण्मो हविर्गृहे तमग्ने वर्धया त्वम् ।

तस्मै सोमो अधि ब्रवदयं च ब्रह्मणस्पतिः (स्वाहा) ॥

यजु. १७ । ५२ (पाठभेद)   अथर्व. ६ । ५ । ३

(यस्य गृहे) जिसके घर में (हविः कृण्मः) हम हवि अर्पण करते हैं, (अग्ने) हे अग्ने ! (तम् वर्धय त्वम्) उसे आप सब प्रकार से समृद्ध कीजिये । (सोमः च ब्रह्मणस्पतिः तस्मै अधि ब्रवत्) सोम तथा ज्ञान के अधिष्ठाता ब्रह्मणस्पति उसे आशीर्वाद दें ।

२०४. आ विश्वदेवं सत्पतिं सूक्तैरद्या वृणीमहे ।

सत्यसवं सवितारम् (स्वाहा) ।।

ऋग्. ५ । ८२ । ७

(विश्वदेवं सत्पति) समस्त संसार को प्रकाशित करने वाले, सबके स्वामी, सज्जनों की रक्षा करने वाले, (सत्यसवं) सत्य की प्रेरणा करने वाले, सत्य को धारण करने वाले, (सवितारं) तथा सबको उत्पन्न करने वाले सविता देव का, परमात्मा का (अद्य सूक्तैः आ वृणीमहे) आज हम श्रेष्ठ वेदमन्त्रों से आवाहन करते हैं । (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति सविता देव के लिये समर्पित है ।

२०५. य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन ।

प्र च सुवाति सविता (स्वाहा) ।।

ऋग्. ५ । ८२ । ९

(यः सविता इमा विश्वा जातानि) जो सविता देव इन समस्त उत्पन्न हुये प्राणियों को (श्लोकेन आश्रावयति) वेदवाणी से ज्ञान का सन्देश देता है (प्र च सुवाति) तथा प्रेरित करता है, (उसका हम श्रेष्ठ वेद मन्त्रों से आवाहन करते है ।) (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति सविता देव के लिये समर्पित है ।

२०६. देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय ।

दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः

स्वदतु स्वाहा ।

यजु. ९ । १, ११ । ७, ३० । १

(देव सवितः) समस्त ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाले तथा अन्तर्यामी रूप से प्रेरणा देने वाले हे सविता देव ! हे जगदीश्वर ! (यज्ञं प्रसुव) यज्ञ को उत्पन्न करके प्रेरित कीजिये, उसका विस्तार कीजिये उसे उत्तम रीति से सम्पन्न कराइये तथा (यज्ञपतिं भगाय प्रसुव) यज्ञ कर्ता को, यजमान को सौभाग्य एवं सुख की ओर प्रेरित कीजिये, उसे सौभाग्य दीजिये । (केतपूः) अन्न एवं ज्ञान को पवित्र करने वाले (दिव्यः) दिव्य गुणों से युक्त (गन्धर्वः गां वाचं पृथिवीं धारयतीति गन्धर्वः) वाणी एवं पृथिवी को धारण करने वाले सविता देव (नः केतं पुनातु) हमारे अन्न एवं ज्ञान को पवित्र करें एवं (वाचस्पतिः) वाणी के स्वामी तथा रक्षक परमात्मा (नः वाचं स्वदतु) हमारी वाणी को मधुर बनायें । (स्वाहा सु-आह सुहुतमस्तु) सत्य एवं सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति सविता देव के लिये समर्पित है, यह सुहुत हो, भली प्रकार स्वीकार हो ।

२०७. विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव ।

यद्भद्रं तन्न आ सुव (स्वाहा) ।।

ऋग्. ५ । ८२ । ५ यजु. ३० । ३

(सवितः देव) समस्त संसार को उत्पन्न करने वाले, उसका पालन पोषण करने वाले, उसे चेतना एवं प्रेरणा देने वाले हे परब्रह्म ! (विश्वानि दुरितानि परासुव) समस्त दुःखों, कष्टों एवं संकटों तथा हमारे समस्त अवगुणों को हमसे दूर कर दीजिये। (यत् भद्रम्) तथा जो हमारे लिये कल्याणकारी हो (तत् नः आ सुव) उसे हमारे पास लाइये, हमें प्राप्त कराइये। (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति सविता देव के लिये समर्पित है।

कैसा सुन्दर है यह मन्त्र ! हमारा कल्याण किसमें है, यह भगवान ही जानता है, इसीलिये यह अनोखी प्रार्थना है तथा समर्पण एवं भक्ति की चरम सीमा है।

सावित्री अथवा गायत्री मन्त्र

इससे कम से कम आठ तथा इच्छानुसार उससे अधिक आहुतियाँ दी जानी चाहिये।

२०८. भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात् (स्वाहा) ॥

यजु. ३। ३५, २२। ९, ३०। २ तथा ३६। ३, साम. उत्तरा. १३। ४। ९. क्र. सं. १४६२; ऋग्. ३। ६२। १०,

(ओ३म्) हे अन्तर्यामी ! हमारे हृदय, मन, प्राण तथा आत्मा में बसने वाले, सर्वव्यापक सर्वेश्वर, सर्वशक्तिमान परमपिता परमात्मा ! (भूः = सत्) हे सर्वाधार, स्वयम्भू ! (भुवः = चित्) हे ज्ञान स्वरूप, सर्वज्ञ ! (स्वः = आनन्द) हे सुखस्वरूप ! परम

आनन्द को देने वाले, (भूर्भुवः स्वः) हे सच्चिदानन्द ! (तत् सवितुः देवस्य) सकल ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने वाले, उसका पालन पोषण करने वाले तथा उसे प्रेरणा देने वाले उस सविता देव के, परब्रह्म के (वरेण्यं भर्गः) वरण करने योग्य, श्रेष्ठ, कल्याणकारी पाप नाशक तेज का हम (धीमहि) ध्यान करते हैं, उपासना करते हैं तथा उसे अपने अन्दर धारण करते हैं। (धियो यो नः) जो परब्रह्म हमारी बुद्धि, वाणी तथा कर्मों को (प्रचोदयात्) कल्याणकारी मार्ग पर प्रेरित करे। अथवा, हे प्रभो ! हमारी बुद्धि, वाणी तथा कर्मों को कल्याणकारी मार्ग पर प्रेरित कीजिये।

महा मृत्युञ्जय मन्त्र

इससे न्यूनतम तीन आहुतियाँ दी जानी चाहिये।

२०९. त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।

उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् (स्वाहा)।

यजु. ३ । ६० (पाठभेद) ऋग्. ७ । ५९ । १२

(सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्) जीवन की सुगन्धि अर्थात् मनुष्य द्वारा किये गये पुण्य कर्मों की सुगन्धि, उसकी यश सुरभि एवं आत्मा तथा शरीर की पुष्टि और धन धान्य आदि का संवर्धन करने वाले (त्र्यम्बकं) त्रिनेत्र रुद्र अर्थात् दुष्टों को रुलाने वाले एवं सज्जनों का कल्याण करने वाले भगवान शिव की हम (यजामहे) उपासना करते हैं तथा यह प्रार्थना करते हैं कि वह हमें (मृत्योः बन्धनात् मुक्षीय) मृत्यु के बन्धन से उसी प्रकार मुक्त करें (उर्वारुकं इव) जिस प्रकार पका हुआ खरबूजा अपनी लता से मुक्त हो जाता है (मा अमृतात्)

किन्तु हमें अमृत से, मोक्ष से मुक्त न करें अर्थात् हमें अमृतत्व प्रदान करें, मोक्ष प्रदान करें।

भगवान को त्र्यम्बक अर्थात् तीन नेत्रों वाला इसलिये कहा जाता है कि वह भूत, भविष्य, वर्तमान तथा पृथिवी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक तीनों को भली प्रकार देखते हैं और इस त्रिगुणात्मिका सृष्टि की रचना कर उसके जन्म, जीवन एवं मरण अथवा प्रादुर्भाव, स्थिति एव प्रलय तीनों को पूर्ण रूपेण नियन्त्रित करते हैं। अथवा, (त्र्यम्बक: त्रिनयन: त्रीणि चन्द्र सूर्याग्निरूपाणि नयनानि यस्य) चन्द्र, सूर्य तथा अग्नि रूपी तीन तेज हैं, नेत्रों के समान जिसके, ऐसे भगवान त्र्यम्बक हैं।

(सुगन्धिम्) यथा वृक्षस्य संपुष्पितस्य दूराद्गन्धो वात्येवं पुण्यस्य कर्मणो दूराद्गन्धो वाति (तै. आ. १० । ९) जिस प्रकार फूलों से भरे हुये वृक्ष की सुगन्धि दूर से ही आती है, उसी प्रकार पुण्य कर्मों की सुगन्धि भी दूर से ही आती है।

प्रजापत्याहुति—यह निम्नाङ्कित मन्त्र को मन में बोलकर दी जानी चाहिये।

२१०. ओम् प्रजापतये स्वाहा। इदं प्रजापतये--इदं न मम ॥

(प्रजापतये) समस्त ब्रह्माण्ड के रचयिता एवं समस्त प्राणियों के रक्षक प्रभु के लिये (स्वाहा) सुन्दर वचनों के साथ यह आहुति समर्पित है।

प्रजापति को मौन आहुति दी जाती है क्योंकि प्रजापति अनिरुक्त है। अनिरुक्तो वै प्रजापतिः—शत. ६ । २ । २ । २१ तथा ऐत. ६ । २० शतप । १ । ४ । ५ । ११-१२ में कहा गया है कि वाणी तथा मन में श्रेष्ठता के लिये विवाद हो गया। दोनों निर्णय के लिये प्रजापति के पास गये। प्रजापति ने वाणी से कहा कि मन तुमसे श्रेष्ठ है क्योंकि तू मन का ही अनुकरण करती है और उसी के मार्ग पर चलती है।

इस पर वाणी खिन्न हो गयी और प्रजापति से कहा कि मैं कभी तुम्हारे लिये हवि नहीं ले जाऊँगी। अतः यज्ञ में जो कुछ प्रजापति के लिये किया जाता है, वह मौन होकर किया जाता है क्योंकि वाणी प्रजापति के लिये हवि की वाहक नहीं होती।

स्विष्टकृत् आहुति

शतपथ ब्राह्मण १।७।३।७ में कहा है कि 'स्विष्टकृत्' अर्थात् अग्नि को आहुति सबसे पीछे दी जाती है क्योंकि सर्वत्र ही देवों ने अग्नि को पीछे भाग दिया। यह आहुति अग्नि के लिये ही दी जाती है। अग्नि ही वह देव है, जिसके नाम हैं शर्व, भव, रुद्र तथा अग्नि। केवल अग्नि नाम ही शान्ततम् है अतः अग्नि स्विष्टकृत् के लिये आहुति दी जाती है। देवों की प्रार्थना पर अग्नि ने आहुति को सु+इष्ट = स्विष्ट अर्थात् शुभ तथा उत्तम बना दिया अतः उसका नाम 'स्विष्टकृत्' हुआ।

यह सु+इष्ट = स्विष्टकृत् आहुति घृत, मिष्ठान्न, खीर, दुग्ध मिश्रित भात, हलुआ आदि शर्करा मिश्रित पाक द्रव्यों से ही जानी चाहिये।

२११. **यदस्य कर्मणो ऽत्यरीरिचं यद्वान्यूनमिहाकरम्।**
अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात् सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे।
अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां
कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा।
इदमग्नये स्विष्टकृते--इद न मम।

पार. गृ. १।२।११ आश्व. गृ. १।१०।२२

(यत् अस्य कर्मणः) जो इस कर्म का (अति अरीरिचम्) आवश्कता से अधिक किया हुआ (यद्वा न्यूनम् इह अकरम्) अथवा इस यज्ञ में जो आवश्यकता से कम किया हुआ भाग है, अग्निः तत् स्विष्टकृत् विद्यात्) यज्ञाग्नि अथवा प्रकाशस्वरूप

परमात्मा उसे उचित रूप से किया हुआ जानें अथवा मानें और (मे सर्वम् स्विष्टम् सुहुतम् करोतु) मेरे इस सम्पूर्ण यज्ञ को यथोचित किया हुआ तथा उत्तम प्रकार से आहुत किया हुआ बना दें। (स्विष्टकृते) यज्ञ कर्मों को समुचित एवं पूर्ण बनाने वाले, (सुहुतहुते) जिसके लिये उत्तम प्रकार से आहुतियाँ दी गयी है, यजन किया गया है, (सर्व प्रायश्चित्ताहुतीनाम्) तथा जिसके लिये समस्त प्रायश्चित्त आहुतियाँ दी जाती हैं, (कामानाम् समर्द्धयित्रे) ऐसे कामनाओं को भली प्रकार पूर्ण करने वाले (अग्नये) अग्नि अथवा प्रकाशस्वरूप परमात्मा के लिये, इस प्रार्थना के साथ कि (सर्वान् नः कामान् समर्द्धय) हमारी समस्त कामनाओं को पूर्ण करें (स्वाहा) यह आहुति सुन्दर नमस्कार वचनों के साथ समर्पित की जाती है। (इदं अग्नये स्विष्टकृते-इदं न मम) यह आहुति स्विष्टकृत् अग्नि के लिये है, यह मेरी नहीं है।

वसोर्धारा– यज्ञ की स्तुति एवं अग्नि के अभिषेक के रूप में केशर, कस्तूरी एवं कपूर आदि से तैयार किये गये घृत की धारा प्रज्वलित अग्नि पर निम्नाङ्कित मन्त्र से छोड़नी चाहिये।

शतपथ ब्राह्मण ६।३।२।१ तथा ६ के अनुसार अग्नि वसु है, देवों ने वसु के लिये यह धारा दी। इसलिये इसका नाम वसोर्धारा हुआ। यह धारा अग्नि का अभिषेक है। जब देवों ने अग्नि को इस अन्न से तृप्त कर लिया और वसोर्धारा से इसका अभिषेक कर लिया, तो उससे कामनाओं की प्रार्थना की। आहुतिय पाकर, तृप्त होकर तथा अभिषेक प्राप्त करके अग्नि ने उनकी कामनाओं की पूर्ति की।

२१२. वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम् ।

देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा

कामधुक्षः ।।

यजु. १ । ३

(वसोः) वसुयज्ञः । (यज्ञो वै वसुः) शतपथ. १ । ७ । १ । १४ (वसोः पवित्रम् असि शतधारं) यज्ञ तुम सैकड़ों धाराओं से, सैकड़ों प्रकार से पवित्र करने वाले तथा धारण करने वाले हो, (वसोः पवित्रम् असि सहस्रधारम्) यज्ञ तुम हजारों धाराओं से, हजारों प्रकार से पवित्र करने वाले तथा धारण करने वाले हो, (सविता देवः) प्रकाशमान सविता देव (वसोः त्वा) तुझ यज्ञ को (शतधारेण सुप्वा पुनातु) सैकड़ों प्रकार से पवित्र करने वाले साधनों से पवित्र करें। [काम् अधुक्षः] यज्ञ ! आज तुमने हमारी कौन सी कामना रूपी गाय को दुहा है ? कौन सी कामना पूर्ण की है ?

श्रद्धा एवं भक्ति पूर्वक यज्ञ करने से निश्चय ही कामनाओं की पूर्ति , जैसा कि गीता ३ । १० में भी कहा है ।

अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्ट कामधुक् ।।

(अनेन प्रसविष्यध्वम्) तुम लोग इस यज्ञ से उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त हो, (एष वः इष्ट कामधुक् अस्तु) यह यज्ञ तुम लोगों की अभीष्ट कामनाओं की पूर्ति करने वाला हो ।

अथवा, (काम् अधुक्षः) कौन सी गाय को हमारे लिये दुहा है ? परमात्मा की तीन प्रमुख शक्तियों रूपी तीन गौवें ही हमारी समस्त कामनाओं को पूर्ण करती हैं और हमें जीवित रखती हैं । अगले मन्त्र (यजु. १ । ४) में इनका उल्लेख निम्न प्रकार किया गया है–

'सा विश्वायुः' वह सबकी आयु अथवा जीवनी शक्ति है, 'सा विश्व-कर्मा' वह सृष्टि को रचने वाली है, 'सा विश्वधाया'। वह सबको धारण करने वाली है। इन्हीं कामधेनुओं के दुग्धामृत की हमें आवश्यकता है, उसी की कामना एवं प्रार्थना है। वास्तव में परमात्मा की उक्त तीनों शक्तियाँ छोटे रूप में हर मनुष्य के पास रहती हैं। वह प्रयास करके इच्छानुसार इनका दोहन कर सकता है।

पूर्णाहुति

पूर्णाहुति में अवशिष्ट घृत के साथ साथ नारियल, सुपाड़ी, मेवा, अथवा अन्य पके फलों की आहुति निम्नाङ्कित तीन मन्त्रों से दी जानी चाहिये।

२१३. ओम् सर्वं वै पूर्णं ꣳ स्वाहा।
ओम् सर्वं वै पूर्णं ꣳ स्वाहा।
ओम् सर्वं वै पूर्णं ꣳ स्वाहा।

इसके उपरान्त निम्नाङ्कित मन्त्र से प्रार्थना के साथ यज्ञाग्नि में दोनों हाथ तपाकर उनसे अपने मुख तथा बाहुओं का स्पर्श करके यज्ञ की पवित्र ऊष्मा से ओज एवं तेज ग्रहण करना चाहिये।

२१४. तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाह्यायुर्दा अग्नेऽस्यायुर्मे देहि
वर्चोदा अग्नेऽसि वर्चो मे देहि। अग्ने यन्मे तन्वा
ऊनं तन्म ऽआपृण ॥

यजु. ३। १७

(अग्ने) हे अग्ने ! (तनूपा असि) आप शरीर की रक्षा करने वाले हैं, (तन्वं मे पाहि) मेरे शरीर की रक्षा कीजिये, (अग्ने आयुर्दा असि आयुः मे देहि) हे अग्ने ! आप आयु देने वाले हैं, मुझे आयु दीजिये, (वर्चोदा अग्ने असि वर्चः मे देहि) हे अग्ने ! आप तेजस्विता देने वाले हैं, मुझे तेजस्विता दीजिये। (अग्ने यत् मे तन्वा ऊनं) हे अग्ने ! मेरे शरीर में जो न्यूनता हो, अस्वस्थता आदि हो, (तत् मे आ पृण) मेरी उस कमी को पूर्ण कीजिये।

तत्पश्चात् यज्ञ भस्म लेकर सभी लोगों को निम्नाङ्कित मन्त्र के साथ अपने मस्तक तथा बाहुओं पर लगाकर दिव्यता एवं दीर्घायु की प्रार्थना करनी चाहिये।

२१५. त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।

यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्॥

यजु. ३। ६२

(जमदग्नेः त्र्यायुषं) हमारे चक्षु की, दृष्टि शक्ति की तिगुनी आयु हो, (कश्यपस्य त्र्यायुषं) हमारे नासारन्ध्र, अर्थात् घ्राणशक्ति तथा प्राणशक्ति की तिगुनी आयु हो, (क्योंकि नाक के नथुनों से ही प्राण का आना जाना होता है) (यत् देवेषु त्र्यायुषं) देवों में जो तिगुनी आयु होती है, (तत् नः अस्तु त्र्यायुषं) वह तिगुनी आयु हमें प्राप्त हो।

यहाँ चक्षु तथा नासारन्ध्र ज्ञानेन्द्रियों के प्रतीक हैं। देवों का अर्थ इन्द्रियाँ भी होता है। इस प्रकार सभी ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों की तिगुनी आयु तथा उनके दिव्य शक्तियों से सम्पन्न होने की प्रार्थना की गयी है।

हमें ज्ञान देने वाले दो चक्षु, दो श्रोत्र, दो नासिका रन्ध्र तथा रसना, ये सात ज्ञानेन्द्रियाँ ही सप्त ऋषि हैं जो हमारे शिर में रहकर ज्ञान द्वारा हमारी रक्षा करते हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद् २ । २ । ४ में कहा गया है कि ये दोनों कान ही गोतम तथा भरद्वाज हैं, दोनों नेत्र ही विश्वामित्र तथा जमदग्नि हैं, दोनों नासारन्ध्र ही वसिष्ठ तथा कश्यप हैं एवं यह वागिन्द्रय ही अत्रि है क्योंकि इसी से अन्न का भक्षण किया जाता है। अत्ता अर्थात् खाने वाला होने के कारण यह अत्ति है, जिसे परोक्ष रूप से अत्रि कहा जाता है।

इसके उपरान्त सभी लोगों को खड़े होकर निम्नाङ्कित मन्त्रों से मन, वाणी तथा कर्म की पवित्रता और अपने कल्याण के लिये प्रार्थना करना चाहिये।

२१६. पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मनसा धियः ।

पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि मा ।।

ऋग्. ९ । ६७ । २७ (पाठभेद) यजु. १९ । ३९
अथर्व. ६ । १९ । १ (पाठभेद)

(पुनन्तु मा देवजनाः) देवगण तथा विद्वान् जन मुझे पवित्र करें (पुनन्तु मनसा धियः) मन के साथ बुद्धियाँ तथा कर्म मुझे पवित्र करें (पुनन्तु विश्वा भूतानि) समस्त प्राणी एवं पदार्थ मुझे पवित्र करें (जातवेदः पुनीहि मा) हे जातवेद अग्ने ! तथा हे प्रभो ! आप मुझे पवित्र कीजिये।

२१७. पवित्रेण पुनीहि मा शुक्रेण देव दीद्यत् ।

अग्ने क्रत्वा क्रतूँ२ रनु ।।

यजु. १९ । ४०

(दीद्यत् देव अग्ने) हे दिव्य गुणों से युक्त देदीप्यमान अग्ने ! (पवित्रेण शुक्रेण मा पुनीहि) अपने पवित्र तेज से मुझे पवित्र कीजिये (क्रतून क्रत्वा अनु) तथा हमारे यज्ञों, कर्मों एवं बुद्धियों को पुनः पुनः पवित्र कीजिये ।

२१८. भद्रो नो अग्निराहुतो भद्रा रातिः सुभग भद्रो अध्वरः ।

भद्रा उत प्रशस्तयः ।।

मजु. १५ । ३८

(सुभग) हे सुन्दर ऐश्वर्य सम्पन्न अग्ने ! (आहुतः अग्निः नः भद्रः) अभिहुत अर्थात् जिसमें भली प्रकार आहुतियां दी जा चुकी हैं, ऐसी यज्ञाग्नि हमारे लिये कल्याणकारी हो, (भद्रा रातिः) हमारे द्वारा दिये गये दान हमारे लिये कल्याणकारी हों, (भद्रः अध्वरः) यज्ञ हमारे लिये कल्याणकारी हो, (भद्राः उत प्रशस्तयः) तथा हमारे द्वारा की गयी स्तुतियां हमारे लिये कल्याणकारी हों ।

तत्पश्चात् निम्नाङ्कित मन्त्रों से अग्नि को प्रणाम करते हुये यज्ञ की प्रदक्षिणा करनी चाहिये।

२१९. नमस्ते हरसे शोचिषे नमस्ते अस्त्वर्चिषे।

अन्यांस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥

यजु. १७ । ११, ३६ । १०

हे अग्ने! (ते हरसे शोचिषे नमः) पापों का हरण करने वाली तथा समस्त रसों का शोषण करने वाली आपकी दीप्तमान ज्वाला को नमस्कार है, (ते अर्चिषे नमः अस्तु) आपके स्तुति योग्य तेज के लिये नमस्कार है। (ते हेतयः) आपकी ज्वालायें (अस्मत् अन्यान् तपन्तु) हमसे भिन्न अन्य लोगों को अर्थात् हमारे शत्रुओं को तपावें, भस्म करें। (अस्मभ्यं पावकः शिवः भव) हे अग्ने! आप हमारे लिये पवित्र करने वाले एवं कल्याणकारी होइये।

२२०. प्राणदा अपानदा व्यानदा वर्चोदा वरिवोदाः।

अन्यांस्ते अस्मत्तपन्तु हेतयः पावको अस्मभ्यꣳ शिवो भव ॥

यजु. १७ । १५

हे अग्ने! (प्राणदाः अपानदाः व्यानदाः वर्चोदाः वरिवोदाः) आप प्राण देने वाले, अपान देने वाले, व्यान देने वाले, तेज तथा बल देने वाले एवं धन देने वाले हैं। (ते हेतयः) आपकी ज्वालायें, आपकी मारक शक्तियाँ (अस्मत् अन्यान्) हमसे भिन्न अन्य व्यक्तियों

को अर्थात् हमारे शत्रुओं को (तपन्तु) तपायें, पीड़ित करें। (अस्मभ्यं पावकः शिवः भव) हे अग्ने ! आप हमारे लिये पवित्र करने वाले तथा कल्याणकारी होइये।

इसके पश्चात् यदि आरती करने की इच्छा हो तो प्रारम्भ में दिये गये प्रार्थना मन्त्र सं. १ से ७ तथा निम्नाङ्कित मन्त्र से आरती करनी चाहिये तथा अन्त में शान्ति पाठ करना चाहिये।

२२१. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।

स भूमिꣳसर्वतः स्पृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्॥

ऋग्. १०। ९०। १ — यजु. ३१। १

साम पूर्वा. ६। ४। ३ क्र. सं. ६१७ — अथर्व. १९। ६। १ (पाठभेद)

वह परम पुरुष हजारों शिर, हजारों नेत्रों तथा हजारों पैर वाला है। वह इस भूमि को, ब्रह्माण्ड को (सर्वतः स्पृत्वा) सब ओर से घेरकर, आच्छादित करके दश अङ्गुल के आकार वाले अथवा नाभि से दश अङ्गुल ऊपर स्थित हृदय में, अथवा दशाङ्गुलम् अर्थात् ब्रह्माण्ड के अन्दर तथा उसके बाहर भी स्थित है। ब्रह्माण्ड को दशाङ्गुलम् इसलिये कहते हैं कि यह पञ्च-महाभूत अर्थात् आकाश, वायु, अग्नि, जल, एवं पृथिवी तथा इनकी तन्मात्रायें, क्रमशः शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध से बनता है।

२५२. द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः

शान्तिरोषधयः शान्तिः ।

वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः

सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ।।

यजु. ३६ । १७

(द्यौः शान्तिः) द्युलोक हमें शान्ति प्रदान करे, अन्तरिक्ष हमें शान्ति प्रदान करे (पृथिवी शान्तिः) पृथिवी हमें शान्ति प्रदान करे, (आपः शान्तिः) जल हमें शान्ति प्रदान करें (ओषधयः शान्तिः) ओषधियाँ हमें शान्ति प्रदान करें, (बनस्पतयः शान्तिः) बनस्पतियाँ हमें शान्ति प्रदान करें,(विश्वे देवाः शान्तिः)समस्त देव एवं विद्वान् हमें शान्ति प्रदान करें, (ब्रह्म शान्तिः) ब्रह्म तथा वेद हमें शान्ति प्रदान करें, (सर्वं शान्तिः) समस्त जगत् हमें शान्ति प्रबान करे (शान्तिः एव शान्तिः) चारों ओर शान्ति ही शान्ति हो (सा शान्तिः मा एधि) तथा वह परम शान्ति मुझे प्राप्त हो ।

अन्त में अवशिष्ट यज्ञपूत हविष्यान्न का प्रसाद के रूप में वितरण करना चाहिये तथा गुरुजनों एवं अन्य आदारणीय सज्जनों को प्रणाम करके ऋत्विजों एवं विद्वान् ब्राह्मणों को आदर पूर्वक भोजन करवाकर यथोचित दक्षिणा देनी चाहिये क्योंकि दक्षिणा यज्ञ का अभिन्न अंग है । साथ ही अन्य सभी अतिथियों एवं आमन्त्रित लोगों का प्रेम पूर्वक सत्कार करना चाहिये ।

ओ३म्

यज्ञानुराग

प्रार्थना, स्वस्तिवाचन, शान्तिपाठ, यज्ञ एवं बृहद् हवन

के

उत्कृष्ट वेदमन्त्र

विधुशेखर त्रिवेदी I. A. S.
(अ. प्रा.)

मूल्य ८०.००

पं० उमादत्त त्रिवेदी स्मृति वेद मन्दिर
ई/१४ इन्डस्ट्रियल, एस्टेट, तालकटोरा रोड
लखनऊ

ॐ

यज्ञानुराग

वैदिक ज्ञान एवं यज्ञ के प्रचार प्रसार

हेतु

श्रीमती चम्पा देवी वैदिक संस्थान

के

तत्वावधान में

मेसर्स उमा प्रकाशन लिमिटेड

ई/१४ इन्डस्ट्रियल एस्टेट, ताल कटोरा रोड, लखनऊ

द्वारा

मुद्रित एवं प्रकाशित

श्री विधुशेखर त्रिवेदी I. A. S.

(अ. प्रा.)

प्रथम संस्करण—२,०००

श्रावण कृष्ण त्रयोदशी, सम्वत् २०५४

शुक्रवार, दिनाङ्क १ अगस्त, १९९७

सर्वाधिकार सुरक्षित

पूज्य पिता

स्व० पं० उमादत्त जी त्रिवेदी

एवं

स्नेहमयी पूज्या माँ

स्व० श्रीमती चम्पा देवी त्रिवेदी

की

पावन स्मृति

में

सादर सर्मापत